अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2023

अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2023

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद, ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
मेहदिया मीर, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

हुब्बे-शदीद	4
तौफ़ीक़ ब-क़द्र-ए-इस्तिदाद	5
हदीस का मुताला	7
ग़लत बात से रोकना	8
नज़र-अंदाज़ करना	10
हालात की रिआयत	11
रास्ता तंग नहीं	13
शिकायत के बावजूद	14
बेहतर इंसान	16
तौहीन का मसला	17
ट्रैफ़िक का सबक़	18
मंसूबा-ए-तख़्लीक़ को समझिए	20
तज़्किया-ए-नफ़्स	21
मुताले के बग़ैर इंसानी शख़्सियत की तकमील मुमकिन नहीं	28
जन्नत की क़ाबिलियत	34
ग़लतफ़हमी	37
कायनाती कल्चर	45
क्राइटेरियन का मसला	46
हक़ीक़त-पसंदी	48

निज़ाम-ए-फ़ितरत 49
नए साल का पैग़ाम 51
इंसान की ख़ुसूसियत 51
अपनी तामीर आप 52
मवाक़े की दुनिया 55
मुक़ाबले की दुनिया 56
वालिदैन की ज़िम्मेदारी 57
दरयाफ़्त, दरयाफ़्त, दरयाफ़्त 59
मसला नहीं हल 60
बा-उसूल ज़िंदगी 61
मुसलमान की असल हैसियत 63
ज़िंदगी का फ़ॉर्मूला 66
अक़वाल-ए-हिकमत 68

हुब्बे-शदीद

मोहब्बत एक फ़ितरी जज़्बा है। जायज़ हुदूद में आदमी किसी भी चीज़ से मोहब्बत कर सकता है, मगर हुब्बे-शदीद यानी शदीद क़ल्बी ताल्लुक़ सिर्फ़ एक अल्लाह से होना चाहिए। सिर्फ़ अल्लाह को यह हक़ है कि इंसान अपने जज़्बात-ए-मोहब्बत को सबसे ज़्यादा उससे वाबस्ता करे, उसकी बेइंतिहा मुहब्बत (strong affection) का सबसे बड़ा मरजा ख़ुदावंद ज़ुलजलाल हो। यही बात है, जो क़ुरआन में इन लफ़्ज़ों में कही गई है—

وَمِنَ ٱلنَّاسِ مَن يَتَّخِذُ مِن دُونِ ٱللَّهِ أَندَادًا
يُحِبُّونَهُمْ كَحُبِّ ٱللَّهِ وَٱلَّذِينَ ءَامَنُوٓاْ أَشَدُّ حُبًّا لِّلَّهِ.

> "और लोगों में कुछ ऐसे हैं, जो अल्लाह के सिवा दूसरों को उसके बराबर ठहराते हैं। उनसे ऐसी मोहब्बत रखते हैं, जैसी मोहब्बत अल्लाह से रखनी चाहिए।" (2:165)

ग़ैरुल्लाह के साथ हुब्बे-शदीद की मुख़्तलिफ़ सूरतें हैं। मसलन ग़ैर-हक़ीक़ी ख़ुदाओं के साथ बढ़ा हुआ क़ल्बी लगाव, अपने अकाबिर से बहुत ज़्यादा अक़ीदत, क़ौम के साथ ग़ैर-मामूली मोहब्बत वग़ैरह। आदमी को जिस चीज़ से हुब्बे-शदीद हो, उसी की याद में वह जीने लगता है, उसी का तज़्किरा उसके लिए सबसे ज़्यादा महबूब बन जाता है। उसके मुक़ाबले में दूसरी चीज़ें रस्मी ताल्लुक़ के ख़ाने में चली जाती हैं।

मौजूदा ज़माने के मुसलमानों की ख़राबियों की जड़ यह है कि उनके अंदर अल्लाह के लिए हुब्बे-शदीद नहीं। ज़ाती मफ़ाद, सियासी इक़्तिदार, क़ौमी इज़्ज़त, तारीख़ी अज़्मत वग़ैरह उनके लिए अमलन हुब्बे-शदीद का मौज़ू बनी हुई हैं, ख़ुदा उनके लिए हुब्बे-शदीद का मौज़ू

नहीं। यही वजह है कि मज़्कूरा क़िस्म की चीज़ों पर उनके दरमियान बड़ी-बड़ी तहरीकें उठती हैं, मगर मोहब्बत-ए-ख़ुदावंदी की बुनियाद पर कोई तहरीक उनके दरमियान नहीं उठी।

मौजूदा ज़माने में जो उलूम-ए-इंसानी (Humanities) ज़ाहिर हुए, उनमें ख़ुदा के वजूद को मुकम्मल तौर पर ख़त्म कर दिया गया, मगर मुस्लिम दुनिया में कोई भी शख़्स नज़र नहीं आता, जो इस पर तड़पे और नए उलूम से वाक़फ़ियत हासिल करके ख़ुदा के वजूद को इल्मी हैसियत से साबितशुदा बनाने के लिए मेहनत करे। अल्लाह तआला को यह मतलूब है कि अक़्वाम-ए-आलम के ऊपर उनकी फ़िक्री सलाहियत (intellectual level) के मुताबिक़ ख़ुदा के दीन की शहादत दी जाए, मगर सारी मुस्लिम दुनिया में कोई एक भी क़ाबिल-ए-ज़िक्र शख़्स नहीं, जो इसके लिए बेचैन हो और इसे जारी करने के लिए उठ खड़ा हो।

तौफ़ीक़ ब-क़द्र-ए-इस्तिदाद

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में 6 हिज्री में सुलह-ए-हुदैबिया का वाक़या पेश आया। इसका तज़्किरा क़ुरआन की सूरह 'अल-फ़तह' में आया है। इसका एक हिस्सा यह है—

> "जब मुंकिरीन ने अपने दिलों में ज़िद पैदा की, जाहिलियत की ज़िद, फिर अल्लाह ने अपनी तरफ़ से सकीनत नाज़िल फ़रमाई अपने रसूल और ईमान वालों पर और अल्लाह ने उन्हें तक़्वे के कलिमे पर जमाए रखा और वे इसके हक़दार और इसके अहल थे और अल्लाह हर चीज़ का जानने वाला है।" (48:26)

इस आयत से एक निहायत अहम उसूल मालूम होता है और वह यह कि आज़माइश की इस दुनिया में अल्लाह तआला ने तौफ़ीक़ ब-क़द्र-ए-इस्तिदाद का निज़ाम क़ायम फ़रमाया है। गोया कि यह एक क़िस्म का दोतरफ़ा मामला है। जिस आदमी के अंदर क़ुबूलियत की इस्तिदाद मौजूद होगी, उसी आदमी तक ख़ुदा की तौफ़ीक़ पहुँचेगी। ज़रूरी इस्तिदाद के बग़ैर किसी को ख़ुदा की तौफ़ीक़ नहीं मिल सकती।

सुलह-ए-हुदैबिया के मौक़े पर दो फ़रीक़ थे— एक तरफ़ क़ुरैश और दूसरी तरफ़ मुसलमान। क़ुरैश के अंदर सरकशी का मिज़ाज था। चुनाँचे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की तरफ़ से पेश की जाने वाली हर माक़ूल बात का इन्होंने इनकार किया। हालात का तक़ाज़ा था कि मुसलमानों के अंदर भी जवाबी इश्तिआल पैदा हो जाए और मुआहिदा-ए-अम्न के बजाय तशद्दुद और जंग की नौबत आ जाए, मगर सहाबा-ए-किराम ने सरकशी के जवाब में सरकशी नहीं दिखाई। उनके दिल का तक़्वा इस बात की ज़मानत बन गया कि वे जवाबी इश्तिआल से बच जाएँ। वे अल्लाह के मंसूबे को समझकर अपने आपको उसके हवाले कर दें।

ख़ुदा की तरफ़ से हक़ ज़ाहिर किया जाता है, मगर उसके एतिराफ़ की तौफ़ीक़ वही लोग पाते हैं, जो अपने आपको ख़ुद-पसंदी की नफ़्सियात से पाक कर चुके हों। ख़ुदा की तरफ़ से जन्नती अमल करने की आला सूरतें पैदा होती हैं, मगर इन सूरतों से फ़ायदा उठाना सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिए मुमकिन होता है, जो दुनिया की तलब को अपने दिल से निकाल चुके हों। ख़ुदा की तरफ़ से दावती काम के मौक़े खोले जाते हैं, मगर इन मौक़ों को इस्तेमाल करने का क्रेडिट उन्हीं लोगों को मिलता है, जो अपने सीने को हर क़िस्म के मनफ़ी जज़्बात से पाक कर चुके हों।

हदीस का मुताला

अस्मा बिंत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हुमा कहती हैं कि सुलह-ए-हुदैबिया के ज़माने में मेरी दूध पिलाने वाली माँ मेरे पास मदीना आईं। उस वक़्त वे शिर्क पर थीं और क़ुरैश की तरफ़ थीं। मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास गई और मैंने पूछा—

يَا رَسُولَ اللهِ، إِنَّ أُمِّي قَدِمَتْ عَلَيَّ وَهِيَ رَاغِبَةٌ، وَهِيَ مُشْرِكَةٌ، أَفَأَصِلُهَا؟ قَالَ:صِلِيهَا.

"मैंने पूछा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, मेरी मुशरिक माँ मेरे पास आई हैं और वे मुझसे कुछ चाहती हैं। क्या मैं उन्हें सिला-रहमी के तौर पर कुछ दूँ? आपने फ़रमाया कि हाँ, उनको दो।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 26994)

यह हदीस ब-ज़ाहिर वालिदैन के साथ हुस्ने-सुलूक के बारे में है, ख़्वाह वे मुशरिक और काफ़िर ही क्यों न हों। हदीस की किताबों में वह इसी तरह के बाब के तहत लिखी हुई मिलेगी, मगर किसी हदीस को समझने के लिए सिर्फ़ उसके 'तर्जुमा-ए-बाब' को देखना काफ़ी नहीं। इसी के साथ हदीस के मतन पर गहराई के साथ ग़ौर करना चाहिए। इसके बाद ही आदमी के ऊपर उसका पूरा मआनी खुल सकता है।

इस हदीस से हुक़ूक़-ए-वालिदैन के मसले के अलावा मज़ीद यह बात मालूम होती है कि यह उस ज़माने का वाक़या है, जबकि क़ुरैश और मुसलमानों के दरमियान ख़ात्मा-ए-जंग का मुआहिदा हो गया था। उसके नतीजे में यह हुआ कि मक्का के मुशरिकीन मदीना आने लगे और मदीना के मुसलमान मक्का जाने लगे।

अक़्ल-ए-आम यह समझने के लिए काफ़ी है कि इस मेल-जोल में सिर्फ़ 'सिला-रहमी' का मसला सामने नहीं आया, बल्कि इसी के साथ यह हुआ कि आपस में बातचीत भी होने लगी। आबाई मज़हब और पैग़ंबराना मज़हब का तक़ाबुल किया जाने लगा। ख़ुद-साख़्ता मज़हब और इल्हामी मज़हब का फ़र्क़ लोगों पर वाज़ेह होने लगा।

इस तरह यह हुआ कि सुलह-ए-हुदैबिया की मंसूबाबंदी ने जंगी माहौल को पुरअम्न दावती माहौल में तब्दील कर दिया। मक्का और मदीना में जहाँ इससे पहले तलवारों की झंकार सुनाई देती थी, वहाँ मज़हबी इंटरेक्शन होने लगा। इस इंटरेक्शन का जो मुस्बत (positive) नतीजा ज़ाहिर हुआ, इस्लाम की इब्तिदाई तारीख़ में इसका मुशाहिदा किया जा सकता है।

ग़लत बात से रोकना

हदीस में आया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

مَنْ رَأَى مُنْكَرًا فَاسْتَطَاعَ أَنْ يُغَيِّرَهُ بِيَدِهِ فَلْيُغَيِّرْهُ بِيَدِهِ.

"तुममें से जो शख़्स ग़लत बात को देखे और वह उसे अपने हाथ से बदलने की ताक़त रखता हो, तो वह उसे अपने हाथ से बदल दे।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4340)

अब एक और हदीस देखिए—

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत आइशा से फ़रमाया कि क़ुरैश ने जब काबा की दोबारा तामीर की तो उन्होंने उसे इब्राहिमी बुनियाद से घटाकर

बनाया। हज़रत आइशा ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आप इसे इब्राहिमी बुनियाद की तरफ़ क्यों नहीं लौटा देते? आपने फ़रमाया कि अगर क़ुरैश अभी नए-नए मुसलमान न हुए होते तो मैं ऐसा कर देता।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1584)

इन दोनों हदीसों का तक़ाबुली (comparative) मुताला करने से मालूम होता है कि ग़लत बात से रोकने का हुक्म एक सीमित (restricted) हुक्म है। अगर वह कोई मुतलक़ (unrestrained) हुक्म होता तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ज़रूर ऐसा करते यानी मुशरिकीन-ए-मक्का ने काबा की तामीर-ए-सानी में जो तब्दीली की थी, उसे ख़त्म करके दोबारा उसे हज़रत इब्राहीम की तामीरी बुनियाद पर खड़ा करते।

इस तक़ाबुल से यह भी मालूम होता है कि ग़लत बात से रोकने में सिर्फ़ 'ताक़त' ही की शर्त नहीं है, बल्कि हिकमत की शर्त भी है। फ़तह-ए-मक्का के बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अरब के हुक्मरान हो चुके थे। आपको यह इस्तिताअत हासिल हो चुकी थी कि आप काबा को ढहाकर उसे इब्राहिमी बुनियाद पर तामीर कर दें, मगर आपने इस्तिताअत के बावजूद ऐसा नहीं किया, क्योंकि हदीस के मुताबिक़ ऐसा करना हिकमत के ख़िलाफ़ था।

ग़लत बात से रोकने के हुक्म का यह मतलब नहीं है कि आदमी जब किसी मुंकिर को देखे, तो फ़ौरन उसके ख़िलाफ़ इक़्दाम (क़दम उठाना) शुरू कर दे। इज्तिमाई ज़िंदगी में कोई इक़्दाम सिर्फ़ बुराई को देखकर नहीं किया जाता, बल्कि हालात को देखकर किया जाता है। मोमिन पर लाज़िम है कि जब वह किसी मुंकिर को देखे, तो उसके ख़िलाफ़ इक़्दाम से पहले यह सोचे कि मेरे अंदर इसकी हक़ीक़ी इस्तिताअत

है या नहीं और अगर ब-ज़ाहिर इस्तिताअत हो, तब भी ऐसा करना हिकमत के मुताबिक़ है या नहीं। इस्तिताअत और हिकमत की दुगनी शर्त का लिहाज़ किए बग़ैर ग़लत बात से रोकने के लिए उठना फ़साद है, न कि इस्लामी हुक्म की तामील।

नज़र-अंदाज़ करना

पैग़ंबर-ए-इस्लाम मक्का में 13 साल रहे। इस मुद्दत में वे तक़रीबन रोज़ाना काबा में जाते थे। वहाँ उस वक़्त 360 बुत रखे हुए थे। ये अरबों के मुख़्तलिफ़ क़बाइल में पूजे जाने वाले बुत थे। मक्का की मर्कज़ियत क़ायम करने के लिए अहले-मक्का के सरदारों ने ये तमाम बुत काबा में इकट्ठा कर दिए थे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम रोज़ाना उन्हें देखते थे, मगर मक्की दौर में कभी आपने उन्हें तोड़ने या फेंकने की कोशिश नहीं की।

इससे इस्लाम का एक अहम उसूल मालूम होता है। वह यह कि वक़्त से पहले कोई काम न छेड़ा जाए। मक्की दौर में आपने इन बुतों को नज़रअंदाज़ किया, मगर बाद में जब मक्का फ़तह हो गया तो आपने फ़ौरन उन्हें निकालकर काबा को इन मुशरिकाना अलामतों से पाक कर दिया।

इस्लाम में इक़्दाम करना भी है, मगर इसी के साथ इस्लाम में नज़र-अंदाज़ करना भी है। इक़्दाम के वक़्त इक़्दाम करना ज़रूरी है, मगर इसी के साथ यह भी इंतिहाई ज़रूरी है कि जहाँ इक़्दाम का मौक़ा न हो, वहाँ सख़्ती के साथ नज़र-अंदाज़ करने की पॉलिसी इख़्तियार की जाए, ख़्वाह ब-ज़ाहिर वह कितना ही संगीन या इश्तिआल-अंगेज़ मामला क्यों न हो।

हाल में किसी मसले को एराज़ के ख़ाने में डालना मुस्तक़बिल में उसके हल का दरवाज़ा खोलना है और बेवक़्त इक़्दाम करना हाल और मुस्तक़बिल दोनों में सिर्फ़ नुक़सान का बाइस होता है। नज़र-अंदाज़ करने की पॉलिसी दरअसल इंतिज़ार करने की पॉलिसी का दूसरा नाम है।

नज़र-अंदाज़ करना एक दानिशमंदाना पॉलिसी है, न कि किसी क़िस्म की बुज़दिली। नज़र-अंदाज़ करना दूसरे लफ़्ज़ों में निज़ाम-ए-फ़ितरत से मुताबिक़त है और नज़र-अंदाज़ न करना निज़ाम-ए-फ़ितरत के ख़िलाफ़ जंग। कोई शख़्स या गिरोह इतना ताक़तवर नहीं कि वह फ़ितरत से लड़कर कामयाब हो सके। इस दुनिया में हर एक के लिए सिर्फ़ एक रास्ता है और वह निज़ाम-ए-फ़ितरत से मुताबिक़त रखना है। इसके बग़ैर मौजूदा दुनिया में किसी के लिए हक़ीक़ी कामयाबी मुमकिन नहीं। नज़र-अंदाज़ करना बे-अमली नहीं, बल्कि नज़र-अंदाज़ करना बा-अमल इंसान का एक उसूल है।

हालात की रिआयत

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को नबूवत मिली तो आपको ख़ुदा की तरफ़ से हुक्म दिया गया कि एक ख़ुदा की इबादत करो और ख़ुदा के पैग़ाम को लोगों तक पहुँचाओ, मगर आपने ऐसा नहीं किया कि फ़ौरन खुले मुक़ामात पर जाएँ, सबके सामने नमाज़ पढ़ें या बुलंद आवाज़ से लोगों को ख़ुदा की तरफ़ पुकारना शुरू कर दें। इसके बरअक्स आपने इब्तिदाई चंद साल तक छुपकर नमाज़ पढ़ी और इनफ़िरादी मुलाक़ातों के ज़रिये ख़ुफ़िया अंदाज़ में तब्लीग़ की।

यह हालात की रिआयत थी। हालात की रिआयत इस्लाम का एक अहम उसूल है। क़ुरआन-ओ-हदीस में कोई हुक्म मुतलक़ अंदाज़ में दिया गया हो, तब भी यह देखना होगा कि हमारे हालात के लिहाज़ से इसकी तामील का हकीमाना तरीक़ा क्या है। हालात के एतिबार से जो क़ाबिल-ए-अमल सूरत हो, उसी के मुताबिक़ हुक्म की तामील की जाएगी। हालात को नज़र-अंदाज़ करते हुए आज़ादाना अंदाज़ इख़्तियार करना न तो इस्लाम का तरीक़ा है और न ही पैग़ंबर-ए-इस्लाम की सुन्नत।

इस तरीक़े को दूसरे अल्फ़ाज़ में फ़ितरी तरीक़ा भी कह सकते हैं। इस दुनिया में किसी भी मामले में नतीजाख़ेज़ जद्दोजहद वही हो सकती है, जिसमें हालात की पूरी रिआयत शामिल हो। हालात की रिआयत न करना फ़ितरत से टकराना है और फ़ितरत से टकराने की तालीम इस्लाम में नहीं दी गई है।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपनी पूरी 23 साल की पैग़ंबराना मुद्दत में इसी तरह हालात की रिआयत से काम किया। आइंदा भी आपके मानने वालों के लिए यही सही तरीक़ा है कि वे जिस माहौल में हों, उसे समझें और उसे बख़ूबी समझकर हालात के मुताबिक़ अपने अमल की मंसूबाबंदी करें। इसके बग़ैर उन्हें ख़ुदा की नुसरत नहीं मिल सकती।

हालात की रिआयत दूसरे लफ़्ज़ों में फ़ितरत की रिआयत है। इस दुनिया के ख़ालिक़ ने जिस क़ानून के तहत अपनी दुनिया को बनाया है, उससे मुताबक़त करने का नाम हालात की रिआयत है। यह रिआयत किसी मक़सद में कामयाबी के लिए लाज़िमी तौर पर ज़रूरी है, ख़्वाह वह मक़सद दीन से ताल्लुक़ रखता हो या दुनिया से।

रास्ता तंग नहीं

फ़तह-ए-मक्का के बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपने साथियों के हमराह मक्का से ताइफ़ जा रहे थे। दरमियान में एक पहाड़ी रास्ता मिला, जो ब-ज़ाहिर तंग था। वहाँ पहुँचकर आपने लोगों से पूछा— "इस रास्ते का नाम क्या है?" लोगों ने बताया— "इसे तंग रास्ता कहा जाता है।" आपने फ़रमाया— "नहीं, बल्कि यह आसान रास्ता है।" (मग़ाजी अल-वाक़िदी, जिल्द 3, पेज नं० 925)

इसका मतलब यह था कि यह सही है कि बतौर वाक़या यह रास्ता तंग है। अगर हम फैलकर इसमें से जाना चाहें तो हम नहीं जा सकेंगे, लेकिन हम इस तरह उसे आसान बना सकते हैं कि हम सिमटकर क़तार की सूरत में इससे गुज़रें। ऐसी सूरत में रास्ते की तंगी हमारे लिए रुकावट नहीं बनेगी।

इससे मालूम हुआ कि पैग़ंबराना निगाह यह है कि तंगी को भी कुशादगी के रूप में देखा जाए। तंगी में भी कुशादगी का राज़ दरयाफ़्त किया जाए। मनफ़ी बातों में भी मुस्बत पहलू तलाश कर लिया जाए।

तंगी बज़ात-ए-ख़ुद तंगी है। रास्ते की चट्टान हर हाल में चट्टान ही रहती है। जो फ़र्क़ है, वह ख़ुद तंगी या चट्टान में नहीं है, बल्कि इसमें है कि जब कोई तंग रास्ता सामने आ जाए या चट्टान हाइल हो तो उस वक़्त तरीक़ा-ए-अमल क्या इख़्तियार करना चाहिए।

एक तरीक़ा बराहे-रास्त मुक़ाबले का है और दूसरा एराज़ का। बराहे-रास्त मुक़ाबले में तंगी और चट्टान बदस्तूर तंगी और चट्टान बने रहते हैं, मगर एराज़ का तरीक़ा उनके वजूद को अमली तौर पर ग़ैर-मुअस्सिर बना देता है।

जब भी ऐसा हो कि आपके सफ़र में कोई रुकावट पेश आ जाए तो उससे टकराने पर अपना ज़हन न लगाइए, बल्कि यह सोचिए कि रुकावट को नज़र-अंदाज़ करके आप कौन-सा ऐसा हल पा सकते हैं, जिसके बाद रुकावट अपनी जगह बाक़ी रहते हुए भी आपके लिए एक ग़ैर-मौजूद चीज़ बन जाए।

हक़ीक़त यह है कि हर रास्ता तंग ही होता है। तंगी और कुशादगी दोनों इज़ाफ़ी चीज़ें हैं। हक़ीक़ी चीज़ सिर्फ़ एक है और वह मंसूबाबंदी है और मंसूबाबंदी मुकम्मल तौर पर और हमेशा इंसान के बस में होती है।

शिकायत के बावजूद

फ़तह-ए-मक्का का वाक़या रमज़ान, 8 हिज्री में पेश आया। इसके जल्द ही बाद शव्वाल, 8 हिज्री में ग़ज़्वा-ए-हुनैन हुआ। फ़तह-ए-मक्का से कुछ दिनों पहले ख़ालिद बिन अल-वलीद ने मदीना आकर इस्लाम क़ुबूल किया था। इसके बावजूद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दोनों मुहिमों में हज़रत ख़ालिद को मुस्लिम लश्कर के एक हिस्से का सरदार बना दिया।

यह बात अंसार के ऊपर भारी थी, क्योंकि अंसार बहुत पहले से रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ऊपर ईमान लाकर हर तरह की क़ुरबानियाँ दे रहे थे, जबकि हज़रत ख़ालिद अभी नए-नए इस्लाम में दाख़िल हुए थे। आजकल की ज़बान में यह गोया सीनियर के ऊपर जूनियर को तरजीह देने का मामला था। ताहम इस शिकायत के बावजूद तमाम अंसार रसूलुल्लाह के साथ रहे, उन्होंने आपके हर हुक्म की इताअत की।

ख़ात्मा-ए-जंग के बाद अरब रिवाज के मुताबिक़ शायरों ने इसके बारे में अशआर कहे। एक शायर, अब्बास बिन मिरदास सलमी ने भी इस मौक़े पर कुछ अशआर कहे। इसमें एक तरफ़ अंसार के हवाले से इस शिकायत का भी तज़्किरा था कि आपने ख़ालिद को तरजीह दी और उन्हें क़ौम के ऊपर अमीर बना दिया। (فَإِنْ تَكُ قَدْ أَمَّرْتَ فِي الْقَوْمِ خَالِدًا), मगर इसी के साथ अंसार की ईमानी स्पिरिट का ज़िक्र इन अल्फ़ाज़ में किया है—

وَقَالَ نَبِيُّ الْمُؤْمِنِينَ تَقَدَّمُوا
وَحُبَّ إِلَيْنَا أَنْ نَكُونَ الْمُقَدَّمَا

"और मुसलमानों के नबी ने कहा कि तुम लोग आगे बढ़ो, तो हमारे लिए यह महबूब बन गया कि हम आगे बढ़कर मुक़ाबला करने वाले हों।"

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 2, पेज नं० 470)

अंसार को अगरचे ज़ाहिरी हालात के मुताबिक़ शिकायत थी, मगर इस शिकायत को उन्होंने अपने अमल पर असर-अंदाज़ होने नहीं दिया। शिकायत के बावजूद वे तमाम मुसलमानों के साथ पूरी तरह जुड़े रहे। शिकायत के बावजूद वे इस्लाम के महाज़ पर मुनज़्ज़म ताक़त (organized power) बनकर खड़े हो गए।

मौजूदा दुनिया में यह नामुमकिन है कि बाहम शिकायतें पैदा न हों। सही या ग़लत अस्बाब के तहत बहरहाल एक को दूसरे से शिकायत पैदा होती है, हत्ता कि रसूल और असहाब-ए-रसूल से भी, मगर मोमिन शिकायतों से बुलंद होता है। वह शिकायतों से ऊपर उठकर मामला करता है, इसीलिए मोमिनीन की जमात में कभी ऐसा नहीं होता कि शिकायत और इख़्तिलाफ़ उनके इत्तिहाद को दरहम-बरहम कर दे।

बेहतर इंसान

अबू हुरैरा कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम लोगों की एक मजलिस के पास खड़े हुए और फ़रमाया—

أَلَا أُخْبِرُكُمْ بِخَيْرِكُمْ مِنْ شَرِّكُمْ؟ فَقَالَ ذَلِكَ ثَلَاثَ مَرَّاتٍ، فَقَالَ رَجُلٌ: بَلَى يَا رَسُولَ اللهِ، أَخْبِرْنَا بِخَيْرِنَا مِنْ شَرِّنَا، قَالَ: خَيْرُكُمْ مَنْ يُرْجَى خَيْرُهُ وَيُؤْمَنُ شَرُّهُ، وَشَرُّكُمْ مَنْ لَا يُرْجَى خَيْرُهُ وَلَا يُؤْمَنُ شَرُّهُ.

"क्या मैं तुम्हें तुम्हारे अंदर अच्छे और बुरे शख़्स के बारे में न बताऊँ? आपने तीन बार यही बात कही। फिर एक शख़्स ने कहा— 'हाँ, ऐ ख़ुदा के रसूल! आप हमें हमारे अच्छे और बुरे के बारे में बताइए।' आपने फ़रमाया— 'तुममें अच्छा शख़्स वह है, जिससे उसके ख़ैर की उम्मीद की जाए और जिसके शर से लोग सलामत हों और तुममें बुरा शख़्स वह है, जिससे ख़ैर की उम्मीद न की जाए और जिसके शर से लोग महफ़ूज़ न हों'।"

(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2263)

यह हदीस निहायत वाज़ेह तौर पर बताती है कि अच्छा आदमी कौन है और बुरा आदमी कौन है। अच्छा आदमी वह है, जिसके बारे में पेशगी तौर पर यक़ीन किया जा सके कि जब भी उससे किसी का साबिक़ा पेश आएगा तो उसे उस आदमी से ख़ैर ही का तोहफ़ा मिलेगा। उससे जिन लोगों को भी तजुर्बा होगा, दुरुस्त क़ौल और नेक अमल ही का तजुर्बा होगा। कोई भी चीज़ उसे इस पर आमादा नहीं करेगी कि वह लोगों के साथ ख़ैर के बजाय शर का मामला करने लगे।

ऐसे आदमी के अंदर बिला-शुब्हा शर भी छिपा हुआ होता है, क्योंकि उसे भी दूसरों की तरह ख़िलाफ़-ए-मिज़ाज बात नापसंद होती है। इश्तिआल-अंगेज़ बात पर उसे भी ग़ुस्सा आता है। उसके अंदर भी नफ़रत और अदावत का तूफ़ान जागता है। उसे भी नुक़सान और ज़्यादती के मौक़े पर तकलीफ़ होती है, मगर इन सबके बावजूद वह अपनी उसूली हैसियत पर क़ायम रहता है।

वह नफ़्सियाती झटकों को अपने ऊपर सहता है। वह ख़ुद कड़वा घूँट पीकर दूसरों को मीठा घूँट पिलाता है। वह ज़्यादती के वाक़यात को अल्लाह के ख़ाना में डाल देता है, ताकि वह डिस्ट्रैक्शन का शिकार न हो और कामिल यकसूई के साथ मक़सद-ए-आला के लिए अपनी सरगर्मी को जारी रख सके।

तौहीन का मसला

लोगों का हाल यह है कि वे तौहीन-ए-इस्लाम का मसला जानते हैं, मगर वे तौहीन-ए-मुस्लिम का मसला नहीं जानते। अगर कोई ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम की तौहीन कर दे तो तमाम लोग भड़क उठेंगे और उसके ख़िलाफ़ पुरजोश मुहिम शुरू कर देंगे, लेकिन एक मुसलमान हर रोज़ दूसरे मुसलमान की तौहीन करता है और इस पर कोई नहीं भड़कता। उसे इस तरह नज़र-अंदाज़ कर दिया जाता है, जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं। हालाँकि शरीयत के मुताबिक़, मोमिन की इज़्ज़त फ़र्ज़ है (सही मुस्लिम, हदीस नंबर 2162) और मोमिन की तौहीन हराम (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 7727)।

इस फ़र्क़ का सबब क्या है? इस फ़र्क़ का सबब यह है कि कोई शख़्स इस्लाम की तौहीन करे, तो ऐसा वाक़या निहायत आसानी

के साथ मुसलमानों के लिए क़ौमी ग़ैरत और क़ौमी फ़ख़्र का मसला बन जाता है। वे अपने फ़ख़्र को क़ायम करने के लिए उठ खड़े होते हैं। इसके मुक़ाबले में मुस्लिम की तौहीन अमलन अपने मुहासबे का मसला है और अपना मुहासबा बिला-शुब्हा उन लोगों के ऊपर बहुत सख़्त है, जो अपने दिल में अल्लाह का ख़ौफ़ नहीं रखते। इस्लाम अल्लाह का आख़िरी दीन है। अल्लाह ने इसके लिए अबदी अज़्मत का फ़ैसला कर दिया है। किसी शख़्स या गिरोह के लिए मुमकिन नहीं कि वह इस्लाम को ज़ेर कर सके। इस्लाम का अबदी मुहाफ़िज़ ख़ुद अल्लाह है और अल्लाह से बड़ा मुहाफ़िज़ और कौन हो सकता है!

मगर जहाँ तक तौहीन-ए-मुस्लिम का मामला है, तो इसकी ज़िम्मेदारी ख़ुद मुसलमानों के ऊपर है। मुसलमानों के ऊपर फ़र्ज़ है कि वे किसी मुसलमान की तौहीन न करें और जब कोई शख़्स एक मुसलमान की तौहीन करे, तो उसे ऐसा करने से रोक दें। जो मुस्लिम मुआशरा इस मुहासबे की रूह से ख़ाली हो जाए, वह अल्लाह की रहमतों से भी दूर हो जाएगा।

ग़ैर-क़ौम की तरफ़ से क़ौमी फ़ख़्र पर ज़द पड़े, तो इस पर भड़क उठना और जबकि ख़ुद अपनी इस्लाह या एहतिसाब का मसला हो, तो इस पर बे-हिस बने रहना ईमान के मुर्दा होने की अलामत है, न कि ईमान की ज़िंदगी की अलामत।

ट्रैफ़िक का सबक़

सहाबी-ए-रसूल अबूज़र ग़िफ़ारी (वफ़ात : 31 हिज्री) कहते हैं—

وَمَا يُحَرِّكُ طَائِرٌ جَنَاحَيْهِ فِي السَّمَاءِ إِلَّا أَذْكَرَنَا مِنْهُ عِلْمًا.

"एक चिड़िया भी फ़िज़ा में अपने परों को फड़फड़ाती, तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इससे हमें एक इल्म की याद दिलाते थे।" (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21361)

दूसरे अल्फ़ाज़ में, आप हमें हर चीज़ से सबक़ सिखाया करते थे। हक़ीक़त यह है कि कायनात में इंसान के लिए लर्निंग के बेशुमार आइटम हैं, जिनके ज़रिये इंसान अपने ख़ालिक़ को पहचान सकता है और अपना इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट कर सकता है।

मसलन, मौलाना फ़रहाद अहमद (पैदाइश : 1984) आजकल बाइक से ऑफ़िस आते-जाते हैं। उन्होंने बताया कि ट्रैफ़िक रूल से हम ज़िंदगी के लिए बहुत-से सबक़ अख़्ज़ कर सकते हैं। मसलन, जब आप बाइक चला रहे होते हैं तो रास्ते में स्पीड ब्रेकर आते हैं, रेड सिग्नल मिलते हैं वग़ैरह। ये सब चीज़ें आपको याद दिलाती हैं कि यह सड़क आपकी नहीं है। यहाँ आपको गवर्नमेंट रूल को फॉलो करना है, रूल की ख़िलाफ़-वर्ज़ी करने पर आपको फ़ाइन लग सकता है। आपका या किसी दूसरे का एक्सीडेंट हो सकता है, इसीलिए रास्ते में जगह जगह बोर्ड लगा रहता है— "सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।"

यही मामला ज़िंदगी का भी है। यहाँ हर दम कोई-न-कोई 'स्पीड ब्रेकर' और 'रेड लाइट' आती है। ये चीज़ें बताती हैं कि इस दुनिया का एक ख़ालिक़ है। यहाँ अपनी ख़्वाहिश पर चलने के बजाय आपको ख़ालिक़ का रूल फॉलो करना है और हर वक़्त सावधान यानी अलर्ट रहकर ज़िंदगी गुज़ारना है, वरना ज़िंदगी के सफ़र में तरह-तरह के डिस्ट्रैक्शन आएँगे, जो आपको सिरात-ए-मुस्तक़ीम से दूर कर देंगे।

रास्ते पर गाड़ी चलाने वाले एक ड्राइवर का ध्यान हर वक़्त स्ट्रीट लाइट पर रहता है, ताकि जब रेड सिग्नल हो, तो वह रुक जाए और ग्रीन सिग्नल हो, तो वह अपनी गाड़ी आगे बढ़ाए। हमें इसी

तरह ज़िंदगी की गाड़ी चलानी है। ग़फ़लत की ज़िंदगी गुज़ारने से हर मुमकिन तौर पर अपने आपको बचाना है और मौक़ों को अवेल करने के लिए सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करना है। यह उसी वक़्त मुमकिन है, जबकि आप ग़फ़लत और डिस्ट्रैक्शन से बचकर ज़िंदगी गुज़ारें।

डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

मंसूबा-ए-तख़्लीक़ को समझिए

'स्पैन'(Span) एक दो माही (bimonthly) मैगज़ीन है, जिसे हिंदुस्तान की अमेरिकन एंबेसी अंग्रेज़ी, हिंदी और उर्दू में शाए करती है। इसके मई-जून, 2021 के टाइटल पेज पर उन्वान था— "माहौलियाती बोहरान का मुक़ाबला करना।"

मैगज़ीन के अकसर मज़ामीन का ताल्लुक़ माहौलियाती मसाइल से था। मसलन इंटेलेक्चुअल ख़ुराक, आपके खाने से जुड़ी है ज़मीन की सेहत, जलवायु परिवर्तन से बचाव, हरित बदलाव की मुहिम वग़ैरह।

मौजूदा ज़माने में ग्लोबल वार्मिंग (global warming) के बारे में मुसलसल ख़बरें आ रही हैं। इंडस्ट्रियल तरक़्क़ी अपने साथ पॉल्यूशन का मसला लाई है। इसके नतीजे में ग्लोबल वार्मिंग का वाक़या पेश आया है यानी मौसम में बिगाड़ (Chaotic weather conditions), पानी के ज़ख़ीरों (ग्लेशियर) का पिघलना, नाज़ुक हैवानात (fragile animals) का ख़ात्मा, समंदर के पानी का आलूदा हो जाना और लाइफ़ सपोर्ट सिस्टम का बिगड़ जाना वग़ैरह। फ़ितरत में इन तमाम ख़राबियों की जड़ ग्लोबल वार्मिंग है।

ग्लोबल वार्मिंग का असल सबब लाइफ़ स्टाइल का मसला है। दुनिया के मौजूदा ज़राए सिर्फ़ यह इजाज़त देते हैं कि इंसान अपनी

हक़ीक़ी ज़रूरत (real need) के ब-क़द्र उसे इस्तेमाल करे, लेकिन आज के इंसान का मक़सद ऐशपरस्त लाइफ़ स्टाइल (luxurious life style) हो गया है। इंसान का यही ग़ैर-हक़ीक़ी मक़सद है, जिसने मौजूदा ज़माने में ग्लोबल वार्मिंग का संगीन मसला पैदा किया है। ग्लोबल वार्मिंग गोया कि फ़ितरत की तरफ़ से इशारती ज़बान में यह ऐलान है कि इंसान का मक़सद मौजूदा दुनिया में पूरा होने वाला नहीं। यह फ़ितरत के ख़िलाफ़ है और जो मंसूबा फ़ितरत के ख़िलाफ़ हो, उसकी तकमील इस दुनिया में मुमकिन नहीं। **डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम**

तज़्किया-ए-नफ़्स

2001 में 'अल-रिसाला' मिशन एक नए दौर में दाख़िल हुआ। हुआ यह कि मैंने जनवरी, 2001 में अपने कुछ साथियों को लेकर 'सेंटर फ़ॉर पीस एंड स्पिरिचुएलिटी इंटरनेशनल' (CPS International) क़ायम किया। इस इदारे का ख़ास मक़सद ख़ुदाई तालीमात के मुताबिक़ अम्न और स्पिरिचुएलिटी को फ़रोग़ देना है। इस मक़सद के लिए तालीम-याफ़्ता अफ़राद को तैयार किया जा रहा है, ताकि ये तर्बियत-याफ़्ता अफ़राद सोसाइटी के मुख़्तलिफ़ तबक़ात तक पहुँचे और इस तरह किसी बड़े फ़िक्री इंक़िलाब का बाइस बनें। इसके लिए सीपीएस के तहत दिल्ली में स्पिरिचुअल क्लास क़ायम की गई, जो ख़ुदा के फ़ज़्ल से ग़ैर-मुतवक़्क़े हद तक कामयाब रही। स्पिरिचुअल क्लास के दौरान जो तजुर्बात पेश आए, इससे समझ में आया कि तज़्किया क्या है।

जब लोग इस हफ़्तावार क्लास में आए, तो मुझसे गुफ़्तगू के दौरान यह मालूम हुआ कि हर आदमी एक कंडीशंड माइंड (conditioned

mind) है और वह इसी में जी रहा है। हर आदमी अपने घर, अपने माहौल और लोगों से मेल-जोल के दौरान जो कुछ देखता और सुनता है, इससे मुसलसल तौर पर उसका ज़हन मुतास्सिर होता रहता है। जब इंसान पैदा होता है, तो वह अपनी फ़ितरी हालत पर होता है, लेकिन धीरे-धीरे वह एक ऐसा इंसान बन जाता है, जो मुकम्मल तौर पर एक कंडीशंड इंसान हो। अब ज़रूरत होती है कि उस पर फ़िक्री डी-कंडीशनिंग (de-conditioning) का अमल किया जाए, ताकि इंसान दोबारा अपनी फ़ितरी हालत की तरफ़ लौट सके।

तज़्किया दरअसल इसी ज़हनी डी-कंडीशनिंग का नाम है। तज़्किया के लफ़्ज़ी मआनी हैं— पाक करना (to purify)। रिवायती तौर पर इसे तज़्किया-ए-क़ल्ब के मआनी में लिया जाता है, मगर हक़ीक़त यह है कि इससे मुराद तज़्किया-ए-ज़हन है। आदमी का ज़हन ही उसके तमाम काम-काज का मरकज़ है। ज़हनी सतह पर बिगड़ी हुई सोच को दोबारा सही सोच बनाने का नाम ही तज़्किया है और इसी के ज़रिये फ़िक्री और अमली एतिबार से वह शख़्सियत बनती है, जिसे 'रुहानी शख़्सियत' या 'रब्बानी शख़्सियत' कहा जाता है।

मेरा तजुर्बा है कि लोग आम तौर पर 'कन्फ़्यूशन' (confusion) में जीते हैं। मसलन एक साहब हमारी स्पिरिचुअल क्लास में आए। वे एक इंटरनेशनल अमेरिकन कंपनी में मैनेजर हैं। वहाँ अमरीकी उसूल के मुताबिक़ 'हायर एंड फ़ायर' (hire and fire) का उसूल राइज है। उन्होंने कहा कि मैं मुसलसल तनाव में रहता हूँ। हर वक़्त जॉब खोने का अंदेशा (fear of losing job) मेरे दिमाग़ पर छाया रहता है। मैंने नसीहत के तौर पर उनकी डायरी में ये अल्फ़ाज़ लिखे—

"One can take away your job. But no one has the power to take away your destiny."

तज़्किया को आम तौर पर तज़्किया-ए-क़ल्ब के हम-मानी समझा जाता है और रिवायती तसव्वुर के मुताबिक़, तज़्किया-ए-क़ल्ब का ज़रिया सूफ़ियाना अज़्कार हैं। जब कोई शख़्स इस क़िस्म के अज़्कार में ज़्यादा मशग़ूल होता है तो उसके दिल में एक कैफ़ियत पैदा होती है, उसी कैफ़ियत को आम तौर पर तज़्किया समझा जाता है, मगर मेरे नज़दीक यह एक बेअसल बात है। यह क़ल्बी कैफ़ियत जो पैदा होती है, वह दरअसल 'वज्द' (ecstasy) है और वज्द का कोई भी ताल्लुक़ तज़्किया-ए-रुहानी से नहीं।

असल यह है कि इस मामले में इंसानी फ़िक्र के दो दौर हैं— साइंस से पहले का दौर और साइंस के बाद का दौर। साइंस के पहले के दौर में यह समझा जाता था कि क़ल्ब जज़्बात-ए-इंसानी का मरकज़ है, इसलिए सूफ़ियों ने तज़्किया-ए-रुहानी के लिए क़ल्ब को मरकज़ बनाया और सालिकीन-ए-तरीक़त (सूफ़ियों के रास्ते पर चलने वाले) के लिए मबनी बर-क़ल्ब वज़ाइफ़ तजवीज़ किए। इन वज़ाइफ़ में मसरूफ़ होने से चूँकि सालिकीन को वज्द जैसी एक कैफ़ियत महसूस होती थी। उन लोगों ने इसी वज्द को ग़लत तौर पर मारिफ़त समझ लिया। हालाँकि मारिफ़त एक शऊरी हालत है, जबकि वज्द सिर्फ़ एक मजहूल एहसास का नाम है। इस ग़लतफ़हमी की बिना पर समझ लिया गया कि यह तरीक़ा हुसूल-ए-तज़्किया के लिए मुफ़ीद है, मगर वज्द की कैफ़ियत सर-ता-सर एक ग़ैर-मुताल्लिक़ कैफ़ियत है, जो हिंदू तरीक़े पर मेडिटेशन (meditation) के ज़रिये भी हासिल होती है।

साइंस के बाद के दौर में यह नज़रिया मतरूक (abolished) हो चुका है। अब इंसान के इल्म में यह बात आ चुकी है कि फ़िक्र व जज़्बात और एहसास का मरकज़ तमामतर ज़हन (mind) है, इसलिए तज़्किये का सही तरीक़ा यह है कि ज़हन की फ़िक्री इस्लाह की जाए। यही तज़्किये का असल तरीक़ा है। हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी कहते हैं

कि कोई चिड़िया भी अगर फ़िज़ा में अपने परों को फड़फड़ाती थी, तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इससे हमें एक इल्म की याद दिलाते थे।

وَمَا يُقَلِّبُ طَائِرٌ جَنَاحَيْهِ فِي السَّمَاءِ، إِلَّا ذَكَرَنَا مِنْهُ عِلْمًا.

"इल्म यानी मारिफ़त-ओ-हिकमत का कोई सबक़ सिखाते थे।"
(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21361)

स्पिरिचुअल क्लास में इसी तरीक़ा-ए-तज़्किया को इख़्तियार किया गया है। एक सूफ़ी से पूछा गया कि तसव्वुफ़ क्या है? उन्होंने कहा कि तसव्वुफ़ का मतलब तसव्वुर है। मेरे नज़दीक, क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में, इसका जवाब यह है कि तसव्वुफ़ का मतलब 'तवस्सुम' (अल-हिज्र, 15:75) है। 'तवस्सुम' का मतलब है—

माद्दी तजुर्बात को मारिफ़त में ढाल लेना।

converting material events into spiritual experience.

रिवायती तौर पर यह समझा जाता है कि मारिफ़त का ज़रिया सोहबत है यानी किसी बुज़ुर्ग के पास बैठने से पुर-असरार तौर पर आदमी के अंदर रब्बानी मारिफ़त पैदा हो जाती है। गोया कि हुसूल-ए-मारिफ़त का ज़रिया सिर्फ़ किसी बुज़ुर्ग की सोहबत है, न कि तदब्बुर-ओ-तफ़क्कुर और ज़ाती मेहनत। यह नज़रिया मिज़ाज-ए-इस्लाम के ख़िलाफ़ है। इस्लाम के मुताबिक़, हर आदमी इस दुनिया में हालत-ए-इम्तिहान में है। इस दुनिया के लिए ख़ुदाई क़ानून यह है—

لَّيْسَ لِلْإِنسَٰنِ إِلَّا مَا سَعَىٰ.

"इंसान के लिए वही है, जो उसने कमाया।" (53:39)

ऐसी हालत में यह मानना कि ज़ाती अमल के बग़ैर सिर्फ़ किसी की सोहबत से रूहानियत या रब्बानियत हासिल हो सकती है, एक मुतज़ाद (cotradictory) नज़रिया है, क्योंकि यह नज़रिया इस हिकमत की नफ़ी कर रहा है, जिसे इम्तिहान कहा जाता है।

क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

كُونُوا۟ رَبَّٰنِيِّـۧنَ.

"ऐ लोगो, रब्बानी बनो।" (3:79)

'रब्बी' के लफ़्ज़ी मआनी हैं— रबवाला। रब्बानी इसी से बना है यानी बहुत ज़्यादा रबवाला। 'रब्बी' या 'रब्बानी' को दूसरे लफ़्ज़ों में यह कहा जा सकता है कि इससे मुराद है— 'ख़ुदारुख़ी सोच' (God-oriented thinking) या 'ख़ुदारुख़ी ज़िंदगी' (God-oriented life) यानी इंसान की वह हालत, जबकि उसकी सोच का मरकज़ ख़ुदा बन जाए, जबकि उसके जज़्बात व एहसासात पर तमामतर ख़ुदा का ग़लबा हो जाए, जबकि ख़ुदा की याद उसकी हस्ती में पूरी तरह समा जाए।

यही वह चीज़ है, जिसे 'रूहानियत' (spirituality) कहा जाता है। मैं समझता हूँ कि अकसर दूसरे शोबों की तरह रूहानियत के दो दौर हैं— साइंस से पहले का दौर (pre-scientific era) और साइंस के बाद का दौर (post-scientific era)। साइंस से पहले के दौर में यह समझा जाता था कि जज़्बात व एहसासात का मरकज़ क़ल्ब (heart) है। चुनाँचे उस ज़माने में रूहानियत के हुसूल का ज़रिया यह समझा जाता था कि क़ल्ब पर फ़ोकस डालकर उसकी इस्लाह की कोशिश की जाए। साधुओं का 'मेडिटेशन' (meditation) और सूफ़ियों का 'मुराक़बा' इसी तर्ज़-ओ-फ़िक्र का नतीजा है।

मगर साइंस के बाद के दौर में यह नज़रिया बे-बुनियाद साबित हो गया। अब मुत्तफ़िक़ा तौर पर यह मान लिया गया है कि क़ल्ब

सिर्फ़ ख़ून की गर्दिश (circulation of blood) का ज़रिया है। सोच और एहसासात का मरकज़ तमामतर इंसान का दिमाग़ है। सर्जरी की तरक़्क़ी के बाद यह किया गया कि ऑप्रेशन करके इंसान के क़ल्ब को उसके सीने से निकाल लिया गया और उसकी जगह मुकम्मल 'मस्नूई क़ल्ब' (artificial heart) लगा दिया गया, जो अब असल क़ल्ब की जगह पूरे जिस्म को ख़ून पहुँचाने का काम करता है। मसलन बी०बी०सी० (उर्दू) की वेबसाइट पर 2 फ़रवरी, 2018 को एक रिपोर्ट शाए हुई, जिसमें ब्रिटिश शहरी ख़ातून मिस सेलवा हुसैन (Selwa Hussain) का वाक़या बयान किया गया है। जब मिस सेलवा हुसैन का फ़ितरी क़ल्ब एक ना-मालूम बीमारी की वजह से क़ाबिल-ए-इस्तेमाल नहीं रहा, तो उन्हें 2017 में मुकम्मल मशीनी क़ल्ब लगाया गया यानी वह मशीनी क़ल्ब, जो एक 'बैक पैक' (backpack) के ज़रिये हर वक़्त उनके साथ रहता है। मशीनी क़ल्ब के साथ वे शऊरी एतिबार से एक नॉर्मल ज़िंदगी गुज़ार रही हैं (Link: shorturl.at/lqJ89)। इसी तरह 'मेडिकल एक्सप्रेस डाट कॉम' पर शाए शूदा रिपोर्ट के मुताबिक़, अमरीका में एक ख़ातून का दिल जब बेकार हो गया तो उसकी जगह एक मुकम्मल मशीनी दिल लगाया गया। (Link: shorturl.at/bju35)

इन दोनों मेडिकल ख़बरों से मालूम होता है कि ऑप्रेशन के बाद इंसान का सीना फ़ितरी क़ल्ब से बिलकुल ख़ाली हो चुका था। इसके बावजूद उसकी सोच और उसके एहसासात ठीक वैसे ही बाक़ी रहे, जैसा कि वे उस वक़्त थे, जबकि फ़ितरी क़ल्ब उसके सीने में मौजूद था। इस तरह के ऑप्रेशन के बाद यह साबित हुआ कि फ़िक्र और एहसास का मरकज़ मुकम्मल तौर पर दिमाग़ है, न कि क़ल्ब।

अकसर लोग कहते हैं कि क़ुरआन-ओ-हदीस में भी क़ल्ब का ज़िक्र इस तरह किया गया है गोया कि दिमाग़ के अलावा क़ल्ब भी सोच और जज़्बात का मरकज़ है, मगर यह बात दुरुस्त नहीं। क़ुरआन

में ऐसे मौक़े पर क़ल्ब का ज़िक्र उसके अदबी इस्तेमाल के एतिबार से है, न कि उसके साइंसी मफ़हूम के एतिबार से।

यहाँ क़ाबिल-ए-ज़िक्र बात यह है कि क़ुरआन में सोच के अमल के लिए सिर्फ़ क़ल्ब का हवाला नहीं दिया गया है, बल्कि 'अक़्ल' और 'लब' का हवाला भी दिया गया है। ये दोनों अल्फ़ाज़ क़ुरआन में तक़रीबन 65 बार इस्तेमाल हुए हैं। इसके अलावा बाज़ ऐसे अल्फ़ाज़ भी इस्तेमाल हुए हैं, जो बिल-वास्ता तौर पर दिमाग़ी अमल से ताल्लुक़ रखते हैं। मसलन 'तवस्सुम' और 'तफ़क्कुर' वग़ैरह। इसके अलावा क़ुरआन में जिस मफ़हूम के लिए 'क़ल्ब' का लफ़्ज़ आया है, ठीक उसी मफ़हूम के लिए कई आयतों में 'समा' और 'बसर' के अल्फ़ाज़ भी आए हैं। मसलन—

لَهُمْ قُلُوبٌ لَّا يَفْقَهُونَ بِهَا وَلَهُمْ أَعْيُنٌ لَّا
يُبْصِرُونَ بِهَا وَلَهُمْ ءَاذَانٌ لَّا يَسْمَعُونَ بِهَآ.

"उनके दिल हैं, जिनसे वे समझते नहीं; उनकी आँखें हैं, जिनसे वे देखते नहीं; उनके कान हैं, जिनसे वे सुनते नहीं।" (7:179)

अगर इस तरह की आयतों की बुनियाद पर यह माना जाए कि सोच के अमल का ताल्लुक़ क़ल्ब से है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि आँख और कान का ताल्लुक़ भी सोच से है, क्योंकि इन आयतों में देखने और सुनने के जिस अमल का ज़िक्र है, उससे मुराद सादा तौर पर कैमरा या टेप रिकॉर्ड की तरह देखना और सुनना नहीं है, बल्कि उससे मुराद वह देखना और सुनना है, जिसमें सोच भी शामिल हो। हक़ीक़त यह है कि क़ुरआन में जहाँ अक़्ल और लब का हवाला है, वहाँ इससे बराहे-रास्त दिमाग़ी अमल मुराद है और जहाँ आँख, कान और दिल के अल्फ़ाज़ आए हैं, वहाँ ये अल्फ़ाज़ अपने मारूफ़ अदबी मफ़हूम में इस्तेमाल हुए हैं। इस तरह साइंस के बाद के दौर में तसव्वुफ़ या रूहानियत का इल्म पूरी तरह बदल गया है। अब रूहानियत का

ताल्लुक़ क़ल्बी वज़ाइफ़ से नहीं, बल्कि उसका ताल्लुक़ ज़हनी इर्तिक़ा (intellectual development) के एक ख़ास मरहले से है।

स्पिरिचुअल क्लास में मैंने इसी उसूल पर लोगों का तज़्किया किया और उनके अंदर रूहानियत लाने की कोशिश की। ख़ुदा के फ़ज़्ल से नतीजा सद-फ़ीसद कामयाब रहा। हमारी क्लास में ऐसे कई अफ़राद शरीक हुए, जिन्होंने बताया कि वे बरसों तक हिंदू गुरुओं और मुसलमान सूफ़ियों के यहाँ रूहानियत के हुसूल की कोशिश करते रहे, मगर उन्हें रूहानियत नहीं मिली, जबकि हमारी क्लास में इन्हें अपनी मतलूब रूहानियत हासिल हो गई।

मुताले के बग़ैर इंसानी शख़्सियत की तकमील मुमकिन नहीं

(मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब का एक इंटरव्यू)

सवाल : इंसानी ज़िंदगी में आप मुताले को क्या अहमियत देते हैं?

जवाब : इंसानी ज़िंदगी में मुताले की अहमियत बेहद बुनियादी है। ग़िज़ा अगर जिस्मानी वजूद के लिए ज़रूरी है, तो मुताला ज़हनी वजूद के लिए। मुताले के बग़ैर इंसानी शख़्सियत की तकमील मुमकिन नहीं।

सवाल : आपके अंदर मुताले का शौक़ कब और कैसे पैदा हुआ?

जवाब : मैं जिस ख़ानदान में पैदा हुआ, वहाँ मुताले, ख़ास तौर पर अदबी मुताले का रिवाज पहले से मौजूद था। इसलिए बचपन ही से मेरे अंदर मुताले का शौक़ पैदा हो गया। ताहम बा-क़ायदा शऊर के तौर पर मेरे अंदर मुताले का ज़ौक़ उस वक़्त पैदा हुआ, जब मैंने सर जेम्स जींज़ (Sir James Jeans, 1877-1946) की किताब पढ़ी। इस किताब ने मेरे सामने मुताले की नई दुनिया खोल दी।

सवाल : मुताले की ग़रज़ क्या रही है?

जवाब : मेरे मुताले की ग़रज़ ख़ास तौर पर दो रही हैं— पहली ग़रज़ यह कि इस्लाम को इसके असल सोर्स (source) और क़दीम उलमा-ए-इस्लाम के ज़रिये समझना और दूसरी यह कि इस्लाम के ख़िलाफ़ जदीद फ़िक्री चैलेंज (modern thought) को बराहे-रास्त ज़राए से मालूम करना। फिर उस मुताले की रोशनी में इस्लाम के तआरुफ़ पर और जदीद फ़िक्री चैलेंज के रद्द में किताबें तैयार करना।

सवाल : आपने किस क़िस्म की किताबों से मुताले का आग़ाज़ किया?

जवाब : इब्तिदा में ज़्यादातर अदबी किताबें पढ़ता था। इसके बाद मदरसे की तालीम के नतीजे में इस्लामी किताबें पढ़ने लगा और इसके बाद मौजूदा ज़माने की नास्तिकता से ताल्लुक़ रखने वाली किताबों को पढ़ना शुरू किया।

सवाल : आपके मुताले की रफ़्तार क्या है?

जवाब : मेरा मुताला और तहरीर (writing) दोनों साथ-साथ जारी रहते हैं, इसलिए मुताले की मिक़दारी रफ़्तार मुतय्यन करना मुश्किल है। मैं रात-दिन बस पढ़ता ही रहता हूँ और दौरान-ए-मुताला जब कोई मज़मून ज़हन में आता है, तो उसे लिख लेता हूँ।

सवाल : किन ज़बानों की किताबें आपके मुताले में रहती हैं?

जवाब : आम तौर पर मैं अरबी, अंग्रेज़ी और उर्दू किताबें पढ़ता हूँ। कभी-कभी फ़ारसी और हिंदी किताब या मज़मून भी पढ़ता हूँ।

सवाल : आपके मुताले का वक़्त क्या होता है?

जवाब : मेरे मुताले का कोई मुक़र्रर वक़्त नहीं। अपने तमाम वक़्त को मैं मुताले ही में सर्फ़ करता हूँ। मुताला मेरी ज़हनी ख़ुराक है।

सवाल : मुताले के इब्तिदाई दौर में आपको किस क़िस्म की ज़हनी व फ़िक्री कैफ़ियत का सामना हुआ?

जवाब : शुरुआत में यह मेरे लिए ज़हनी तफ़रीह के हम-मानी था। इसके बाद वह तलाश-ए-हक़ के हम-मानी बना। अब मुताला मेरे लिए ख़िदमत-ए-इस्लाम का वसीला है।

सवाल : आपके अपने मौज़ू या मौज़ूआत की अव्वल दर्जे की किताबें आपकी नज़र में कौन-सी हैं?

जवाब : किसी मौज़ू के तारीख़ी सोर्स के तौर पर तो मुझे बहुत-सी किताबें अव्वल दर्जे की नज़र आईं। मसलन तफ़्सीर में मुहम्मद बिन अहमद बिन अबू बक्र अल-क़ुर्तबी (वफ़ात : 1273 ईस्वी) की 'अल-जामेउल अहकामिल क़ुरआन'। इल्म-ए-हदीस में इब्न-ए-हजर (वफ़ात : 1449 ईस्वी) की 'फ़तहुलबारी', सीरत में 'सीरत इब्न-ए-कसीर' वग़ैरह। इसी तरह जदीद ज़हन को समझने के लिए ब्रिटिश फ़िलॉस्फ़र बर्ट्रेंड रसेल (Bertrand Russell, 1872-1970) की किताब 'ह्यूमन नॉलेज' (Human Knowledge), मगर इस्लाम को साइंटिफ़िक उस्लूब और जदीद फ़िक्री लेवल पर पेश करने के लिए कोई भी किताब मुझे अव्वल दर्जे की नज़र नहीं आई।

सवाल : क्या किसी मौज़ू पर तक़ाबुली मुताले (comparative study) का भी आपको मौक़ा मिल सका है?

जवाब : तक़ाबुली मुताले के सिलसिले में ख़ास तौर पर मैंने मज़ाहिब का तक़ाबुली मुताला किया है।

सवाल : तक़ाबुली मुताले में किन बातों को पेश-ए-नज़र रखना आप ज़रूरी समझते हैं?

जवाब : तक़ाबुली मुताले को कामयाब बनाने की दो लाज़िमी शर्तें हैं— गहरा मुताला और मौज़ूइय्यत (subjectivity)।

सवाल : रिसर्च और तहक़ीक़ के लिए मुताले में किन बातों को पेश-ए-नज़र रखना ज़रूरी ख़याल करते हैं?

जवाब : इल्मी रिसर्च के लिए ज़रूरी है कि जिस मौज़ू का मुताला पेश-ए-नज़र है, उसकी बराहे-रास्त किताबों को पढ़ा जाए और जो कुछ पढ़ा जाए, ग़ैर-जानिबदाराना (unbiased) ज़हन के तहत पढ़ा जाए।

सवाल : तसनीफ़-ओ-तालीफ़ (authorship and compilation) का काम करने वालों को मुताले में किन बातों का लिहाज़ रखना ज़रूरी है?

जवाब : किसी मुसन्निफ़ की तसनीफ़ को उसके मुताले का नतीजा होना चाहिए, न कि तसनीफ़ ही मुताले का मुहर्रिक हो।

सवाल : आपके मुताले का क्या तरीक़ा होता है?

जवाब : मुझे इल्म से दिलचस्पी है। मैं हर उस किताब को पढ़ता हूँ, जो इल्मी उस्लूब में लिखी गई हो।

सवाल : हासिल मुताले को महफ़ूज़ रखने के लिए आप क्या तरीक़ा इख़्तियार करते हैं?

जवाब : हासिल मुताले को महफ़ूज़ रखने के लिए मैं قَيِّدُوا الْعِلْمَ بِالْكِتَابَةِ (इल्म को लिखकर महफ़ूज़ करो) पर अमल करता हूँ। हाफ़िज़ा ख़्वाह कितना ही अच्छा हो, वह हरगिज़ किताब का बदल नहीं।

सवाल : क्या आप दौरान-ए-मुताला किताब के अहम जुमलों या पैराग्राफ़ को निशान-ज़द भी करते हैं?

जवाब : अगर ज़ाती किताब हो तो मुताले के दौरान मैं ज़रूरी निशानात करता रहता हूँ, मगर लाइब्रेरी की किताबों पर निशानात लगाना मुझे पसंद नहीं।

सवाल : सफ़र में आप किस तरह की किताबें पढ़ते हैं?

जवाब : सफ़र में ज़्यादातर में अख़बार या रिसाला जैसी हल्की-फुल्की चीज़ें पढ़ता हूँ।

सवाल : क्या आप मुताला बराए तफ़रीह या मुताला बराए वक़्त-गुज़ारी को भी रवाँ रखते हैं और अगर रवाँ रखते हैं, तो किस हद तक?

जवाब : तफ़रीह या वक़्त-गुज़ारी के लिए मुताला उस शख़्स को रवाँ है, जो संजीदा मुताला न कर सकता हो।

सवाल : आपके पसंदीदा मौज़ूआत क्या हैं ? तरजीही तर्तीब के साथ।

जवाब : मेरे पसंदीदा मौज़ूआत यह हैं— तमाम इस्लामी मौज़ूआत और तमाम मुख़ालिफ़-ए-इस्लाम मौज़ूआत।

सवाल : अदब (literature) में आप किस नज़रिये के हामी हैं?

जवाब : अदबी मुताले से मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। इसे मैं सिर्फ़ वक़्त की बरबादी समझता हूँ।

सवाल : एक अदीब या शायर की ज़िंदगी में आप मुताले को क्या अहमियत देते हैं?

जवाब : अदीब या शायर को सिर्फ़ यह मश्वरा दिया जा सकता है कि वह अदब या शायरी को छोड़ दे।

सवाल : वे कौन-सी किताबें हैं, जिन्हें आप अपनी पसंदीदा किताबों में शुमार करते हैं और इसकी पसंदीदगी के अस्बाब क्या हैं?

जवाब : तारीख़ी माख़ज़ के तौर पर मुझे बहुत-सी किताबें पसंद हैं, मगर जदीद इल्मी उस्लूब में इस्लाम की तर्जुमानी करने के लिए जो किताबें लिखी गई हैं, उनमें से कोई किताब मुझे पसंद नहीं।

सवाल : आपके पसंदीदा मुसन्निफ़ीन (writer) कौन-कौन से हैं? वजह-ए-पसंदीदगी पर भी रोशनी डालिए।

जवाब : दौर-ए-जदीद के मुस्लिम मुसन्निफ़ीन में से कोई मुसन्निफ़ मुझे पसंद नहीं। उनमें से किसी की किताब मेरे नज़दीक (जदीद) इल्मी उस्लूब पर नहीं है।

सवाल : आपको सबसे ज़्यादा किस मुसन्निफ़ ने मुतास्सिर किया?

जवाब : मुझे सबसे ज़्यादा मेरे शऊर-ए-फ़ितरत ने मुतास्सिर किया। मेरे नज़दीक सबसे बड़ी किताब फ़ितरत की किताब है।

सवाल : आपके पसंदीदा अदीब व शायर कौन-कौन से हैं? उन्हें दूसरों के मुक़ाबले में आप क्यों तरजीह देते हैं?

जवाब : मुझे कोई अदीब या शायर पसंद नहीं। अदब और शायरी को मैं एक फ़ितरी सलाहियत का ग़लत इस्तेमाल समझता हूँ।

सवाल : क्या आपको इज्तिमाई मुताले का मौक़ा मयस्सर आता है?

जवाब : इज्तिमाई मुताले का ज़ौक़ मेरे अंदर नहीं है।

सवाल : आप किताबें ख़रीदकर पढ़ते हैं या दूसरों की किताबों और लाइब्रेरियों से इस्तिफ़ादा करते हैं?

जवाब : मैं अपनी गुंजाइश के हिसाब से किताबें ख़रीदता हूँ, वरना दूसरों से या लाइब्रेरी से लेकर पढ़ता हूँ।

सवाल : क्या आपकी कोई ज़ाती लाइब्रेरी भी है? उसे दुरुस्त रखने के लिए आप क्या सूरत इख़्तियार करते हैं?

जवाब : मेरी ज़ाती लाइब्रेरी है। इसे दुरुस्त रखने के लिए मैं यह करता हूँ कि हर किताब को उसकी मुतय्यन जगह पर रखता हूँ।

सवाल : मुताले के ताल्लुक़ से अपना कोई ख़ास तजुर्बा?

जवाब : मुताले के सिलसिले में मेरा तजुर्बा यह है कि आदमी लिखने से ज़्यादा पढ़ने पर ध्यान दे। ज़ाती तौर पर मेरी तहरीर मेरे मुताले का हासिल (by-product) होती है।

सवाल : मुताले के शाइक़ीन के लिए अगर कोई तजवीज़ या मश्वरा हो, तो पेश फ़रमाएँ?

जवाब : तमाम बेहतरीन किताबें संजीदा उस्लूब में होती हैं, इसलिए मुताले को नतीजाख़ेज़ बनाने के लिए ज़रूरी है कि आदमी संजीदा मुताले का ज़ौक़ अपने अंदर पैदा करे। सतही चीज़ों का मुताला आदमी के अंदर सतही मिज़ाज पैदा करता है और गहरी चीज़ों का मुताला उसके अंदर गहरी फ़िक्र की परवरिश करता है। मुताले का मक़सद सिर्फ़ वाक़फ़ियत में इज़ाफ़ा नहीं, बल्कि मुताले में इज़ाफ़ा है, इसीलिए कहा गया है— "एक हिस्सा इल्म के लिए दस हिस्से अक़्ल की ज़रूरत होती है।" बसीरत के बग़ैर इल्म से हक़ीक़ी फ़ायदा नहीं उठाया जा सकता। (ब-हवाला : मेरा मुताला, मुरत्तब ताबिश मेहदी, नई दिल्ली, 1995, सफ़हात 209-212)

जन्नत की क़ाबिलियत

जन्नत बेहद अज़ीम नेमत है (सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2450)। वह बेहद महँगी क़ीमत पर किसी को मिलेगी। बहुत थोड़े ख़ुशनसीब लोग होंगे, जो जन्नत की लतीफ़ दुनिया में बसाए जाने के क़ाबिल ठहरें। जन्नत में दाख़िले का पहला इम्तिहान यह है कि आदमी मारिफ़त के दर्जे में अपने रब को पाए। अफ़्कार-ओ-ख़यालात के जंगल में वह सच्चाई को दरयाफ़्त करे। वह न महसूस होने वाली जन्नत को महसूस करे। वह ज़ाहिरी हंगामों से गुज़रकर आख़िरत की दुनिया का मुसाफ़िर बन जाए।

इसी तरह जन्नत में दाख़िले की शर्त यह है कि आदमी सरकशी का रास्ता इख़्तियार करते हुए अपने आपको ख़ुदा के आगे झुका दे। ख़ुद-परस्त बनने के तमाम अस्बाब को नज़र-अंदाज़ करते हुए वह सच्चा

ख़ुदा-परस्त बन जाए। कशिश और जाज़बियत के बेशुमार मराकज़ से मुँह मोड़कर वह हमा-तन ख़ुदा की तरफ़ मुतवज्जह हो जाए।

इसी तरह जन्नत में दाख़िला सिर्फ़ उस शख़्स के लिए मुमकिन होगा, जो मनफ़ी हालात के दरमियान हमेशा मुस्बत ज़हन पर क़ायम रहे। जो अपने सीने में उठने वाले हसद, घमंड और इंतिक़ाम जैसे जज़्बात को दफ़न करके एकतरफ़ा तौर पर पूरी तरह लोगों के लिए शफ़क़त और ख़ैर-ख़्वाही वाला बन जाए। जो ज़ुल्म और बे-इंसाफ़ी के मौक़े को पाने के बावजूद उन्हें इस्तेमाल न करे और हर हाल में अपने आपको अदल-ओ-इंसाफ़ का पाबंद बना ले।

जन्नत एक नफ़ीस-तरीन ख़ुदाई कॉलोनी है। इस नफ़ीस कॉलोनी में सिर्फ़ वही रूहें दाख़िल होंगी, जिन्होंने दुनिया की ज़िंदगी में अपने ऊपर तज़्किये का अमल कर लिया था यानी अपनी फ़िक्र को पाक करने का अमल किया था। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक मुताल्लिक़ आयत यह है—

جَنَّٰتُ عَدۡنٖ تَجۡرِي مِن تَحۡتِهَا ٱلۡأَنۡهَٰرُ
خَٰلِدِينَ فِيهَاۚ وَذَٰلِكَ جَزَآءُ مَن تَزَكَّىٰ.

"उनके लिए हमेशा रहने वाले बाग़ हैं, जिनके नीचे नहरें जारी होंगी। वे उनमें हमेशा रहेंगे और यह बदला है उस शख़्स का, जो अपना तज़्किया करे।" (20:76)

मौजूदा दुनिया इम्तिहान की दुनिया है। यहाँ हर आदमी हालत-ए-इम्तिहान में पैदा किया जाता है। अब हर आदमी को यह करना है कि वह अपने तज़्किये का एक मुसलसल अमल शुरू करे, यहाँ तक कि इसकी आलूदा (polluted) शख़्सियत पाक व साफ़ होकर मुज़क्की शख़्सियत में बदल जाए।

जन्नती इंसान वह इंसान है, जो काँटों के दरमियान फूल बनकर रहे,

जो अँधेरों के दरमियान रोशनी का मीनार बन सके, जो ज़लज़लों और तूफ़ानों के दरमियान सुकून का राज़ पा ले, जो नफ़रतों के दरमियान मोहब्बत का सबूत दे, जो लोगों की ज़्यादतियों के बावजूद एकतरफ़ा तौर पर उन्हें माफ़ कर दे और जो खोने में भी पाने का तजुर्बा करे।

जन्नती इंसान वह है, जो ब-ज़ाहिर ख़ुदा से दूर होते हुए भी ख़ुदा से क़रीब हो गया हो, जो सूरज की शुआओं (rays) में ख़ुदा के नूर को देखे, जो हवाओं के झोंकों में लम्स-ए-रब्बानी (Divine Touch) का तजुर्बा करे, जो पहाड़ों की बुलंदी में ख़ुदा की अज़्मत का तआरुफ़ हासिल कर सके, जो दरियाओं की रवानी में ख़ुदा की रहमत का मुशाहिदा करे और जो मख़्लूक़ात के आईने में ख़ालिक़ का जलवा देखने लगे।

ख़ुदा ने अपने पैग़ंबरों के ज़रिये यह बता दिया है कि जन्नती इंसान की सिफ़ात क्या होती हैं। जो लोग दुनिया की ज़िंदगी में अपने अंदर जन्नती सिफ़ात पैदा करें, वे मौत के बाद जन्नत में दाख़िले के मुस्तहिक़ क़रार पाएँगे। जन्नत वह 'मेयारी दुनिया' (ideal world) है, जहाँ पूरी इंसानी तारीख़ के 'मुज़क्की अफ़राद' (purufied personalities) आबाद किए जाएँगे यानी वे लोग, जो ग़फ़लत की ज़िंदगी को तर्क करके शऊर की ज़िंदगी को इख़्तियार करें, जो काबिल 'पेशीनगोई किरदार' (predictable character) के हामिल हों और जो अपने आपको उन चीज़ों से बचाएँ, जो तक़्वे और इंसानी ख़ैर-ख़्वाही से रोकने वाली हैं। मस्लिहत की रुकावट सामने आए, तो उसे नज़र-अंदाज़ कर दें। नफ़्स की ख़ाहिश उभरे, तो वे उसे कुचल दें। ज़ुल्म और घमंड की नफ़्सियात जागे, तो वे उसे अपने अंदर दफ़न कर दें।

जन्नत में दाख़िला न किसी सिफ़ारिश की बुनियाद पर होगा, न किसी के साथ निस्बत की बुनियाद पर और न ही किसी ख़याली अमलीयात की बुनियाद पर। जन्नत में दाख़िला पूरी तरह मालूम हक़ीक़त पर मबनी है और वह यह कि जो आदमी मौजूदा दुनिया में

अपने क़ौल-ओ-अमल के एतिबार से जन्नती इंसान बनकर रहेगा, वह आख़िरत की जन्नत में दाख़िला पाएगा।

ग़लतफ़हमी

मुफ़स्सिर इब्न कसीर (वफ़ात : 1373 ईस्वी) ने सूरह 'बनी इसराईल' (आयत 110) के तहत एक रिवायत इन अल्फ़ाज़ में नक़्ल की है—

أَنَّ رَجُلًا مِنَ الْمُشْرِكِينَ سَمِعَ النَّبِيَّ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ وَهُوَ يَقُولُ فِي سُجُودِهِ: يَا رَحْمَنُ يَا رَحِيمُ، فَقَالَ: إِنَّهُ يَزْعُمُ أَنَّهُ يَدْعُو وَاحِدًا وَهُوَ يَدْعُو اثْنَيْنِ.

> "मुशरिकीन में से एक शख़्स ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को सुना, आप सज्दे में कह रहे थे कि ऐ रहमान, ऐ रहीम! मुशरिक शख़्स ने यह सुनकर कहा कि यह शख़्स समझता है कि वह एक ख़ुदा की दावत देने वाला है, हालाँकि वह दो ख़ुदाओं को पुकार रहा था।"
>
> (तफ़्सीर इब्न कसीर, जिल्द 5, पेज नं० 117)

यह एक छोटा-सा वाक़या है, जिससे अंदाज़ा होता है कि किस तरह बहुत-सी शिकायतें और एतराज़ात महज़ आदमी की अपनी कम-समझी का नतीजा होती हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम एक ख़ुदा को उसकी कई सिफ़तों के साथ पुकार रहे थे, क्योंकि ख़ुदा अगरचे एक है, मगर उसकी सिफ़तें बेशुमार हैं, मगर मज़्कूरा अरब बद्दू ने सिफ़ात में तादाद को वजूद की तादाद के हम-मानी समझ लिया और इस तरह एक तौहीद के मानने वाले इंसान के बारे में ग़लत तौर पर यह राय क़ायम कर ली कि वह भी उसी की तरह मुशरिक है।

इंसान एक बेहद पेचीदा मख़्लूक़ है, उसकी ज़िंदगी के ला-तादाद पहलू हैं। यही वजह है कि इंसान के बारे में राय क़ायम करना बेहद दुश्वार काम होता है। इसमें 50 फ़ीसद से ज़्यादा ग़लतफ़हमी का इमकान है, इसलिए आदमी को चाहिए कि दूसरे शख़्स के बारे में राय क़ायम करने में वह निहायत मोहतात हो। ख़ुशगुमानी क़ायम करने में आदमी अगर ग़ैर-मोहतात हो, तो कोई हर्ज नहीं, मगर बद-गुमानी क़ायम करना हो, तो आदमी के लिए लाज़िम है कि वह बेहद संजीदा हो, वह आख़िरी हद तक एहतियात से काम ले।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी में इस उसूल की एक मिसाल यह है कि ख़िलाफ़त के लिए आप अपने बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ को सबसे ज़्यादा अहल समझते थे, मगर आपने कभी अपनी ज़बान से इसका सराहन इज़्हार नहीं फ़रमाया। इसकी वजह यह थी कि आपको यक़ीन था कि आपके बाद आपके अस्हाब ख़ुद ही इस मतलूब फ़ैसले तक पहुँच जाएँगे। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ की मौजूदगी में वे किसी और को अपना अमीर या ख़लीफ़ा नहीं बनाएँगे। चुनाँचे ऐसा ही हुआ। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की वफ़ात के बाद जब अमीर चुनने का सवाल पैदा हुआ, तो सहाबा ने तक़रीबन इत्तिफ़ाक़-ए-राय से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ को अपना ख़लीफ़ा चुन लिया।

तारीख़ बताती है कि इस मिसाल के बावजूद ख़लीफ़ा-ए-अव्वल ने इस मामले में इज्तिहाद से काम लिया। अपने बाद ख़लीफ़ा-ए-दोम के मामले को उन्होंने लोगों के ज़रिये इंतिख़ाब के ऊपर नहीं छोड़ा, बल्कि एलानिया तौर पर हज़रत उमर फ़ारूक़ को इस मनसब के लिए नामज़द फ़रमाया।

इसका सबब यह था कि लोगों को हज़रत उमर फ़ारूक़ के बारे में एक सख़्त क़िस्म की ग़लतफ़हमी थी। हज़रत उमर फ़ारूक़ के मिज़ाज में शिद्दत थी। लोग हज़रत उमर फ़ारूक़ के इख़्लास और

क़ुर्बानी का एतराफ़ करते थे, मगर उन्हें यह अंदेशा था कि एक ऐसा आदमी ख़िलाफ़त के नाज़ुक मनसब के लिए मुनासिब नहीं, जिसके अंदर शिद्दत और तनक़ीद का मिज़ाज पाया जाए। हज़रत उमर फ़ारूक़ के बारे में लोगों की इसी ग़लतफ़हमी की बिना पर ख़लीफ़ा-ए-अव्वल को यह अंदेशा था कि अगर उन्होंने ख़ुद से उमर फ़ारूक़ को नामज़द नहीं किया, तो आपके बाद मुसलमान शायद उन्हें अपना अमीर बनाने पर इत्तिफ़ाक़ न कर सकेंगे और इस तरह ऐन वही शख़्स मुसलमानों का अमीर बनने से रह जाएगा, जो अपनी ख़ुसूसी अहलियत की बिना पर मुसलमानों की पूरी जमात में अमीर या ख़लीफ़ा बनने का सबसे ज़्यादा अहल है।

यह ग़लतफ़हमी सरासर बे-बुनियाद थी। असल हक़ीक़त बरअक्स तौर पर यह है कि हज़रत उमर फ़ारूक़ इंतिहाई बेमिसाल इंसानों में से थे, जिन्हें तारीख़-साज़ इंसान कहा जाता है, मगर इस ग़ैर-मामूली सिफ़त के बावजूद बज़ाहिर यह मुमकिन नज़र नहीं आता था कि ख़लीफ़-ए-दोम के मनसब के लिए लोग उनके नाम पर मुत्तफ़िक़ हो जाएँगे। यही अंदेशा था, जिसकी बिना पर ख़लीफ़ा-ए-अव्वल को इस मामले में पेशगी नज़ीर के बावजूद इज्तिहाद करना पड़ा। चुनाँचे उन्होंने ज़ाती मुदाख़लत करते हुए उमर फ़ारूक़ को अपने बाद ख़िलाफ़त के लिए नामज़द कर दिया।

ख़िलाफ़त के ताल्लुक़ से हज़रत उमर फ़ारूक़ के बारे में लोगों की यह राय दुरुस्त न थी। हज़रत उमर फ़ारूक़ बेहद उसूल-पसंद इंसान थे। वे हक़ के मामले में मस्लिहत को गवारा नहीं करते थे। इस चीज़ ने उनके मिज़ाज में शिद्दत पैदा कर दी थी। वे जब भी किसी को कोई ग़लत बात कहते हुए या ग़लत काम करते हुए देखते, तो वे इस पर सख़्त तंबीह-ओ-तनक़ीद करते। वे जिस चीज़ को हक़ समझते, उसके ऐलान में वे कभी किसी की रियायत नहीं करते थे। इस बिना

पर लोग उनसे दूर रहने लगे, हत्ता कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

رَحِمَ اللهُ عُمَرَ، يَقُولُ الحَقَّ وَإِنْ كَانَ مُرًّا، تَرَكَهُ الحَقُّ وَمَا لَهُ صَدِيقٌ.

"ख़ुदा उमर पर रहम करे! वे हक़ कहते हैं, अगरचे वह कड़वा हो, उनका सरमाया हक़ है और उनका कोई दोस्त नहीं।"
(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 3714)

हज़रत उमर फ़ारूक़ की शिद्दत सिर्फ़ नाहक़ के ख़िलाफ़ होती थी, न कि किसी इंसान के ख़िलाफ़। वे ऐन उस वक़्त भी इंसान के ख़िलाफ़ नफ़रत से ख़ाली होते, जबकि वे उसकी तंबीह कर रहे होते थे। उनके दिल में ऐन उस वक़्त भी इंसान के लिए ख़ैर-ख़्वाही का जज़्बा होता था, जबकि बज़ाहिर वह उसके ख़िलाफ़ ग़ुस्सा करते हुए दिखाई देते थे। उनकी हर सख़्ती में एक नरमी छिपी होती थी। उनकी हर तनक़ीद के पीछे मोहब्बत का जज़्बा होता था।

आम लोग इस नाज़ुक फ़र्क़ को न समझ सके, इसलिए उन्हें हज़रत उमर फ़ारूक़ के बारे में सख़्त ग़लतफ़हमी पैदा हो गई। ताहम जो लोग ज़्यादा बा-शऊर थे, वे इस राज़ को समझते थे। चुनाँचे जब हज़रत अबू बक्र ने हज़रत उस्मान से हज़रत उमर के बारे में पूछा तो, हज़रत उस्मान ने उनके बारे में कहा कि उनका अंदर उनके बाहर से बेहतर है और हमारे दरमियान उनके जैसा कोई नहीं है। इसी तरह हज़रत अबू बक्र ने लोगों की शिकायात का जवाब देते हुए कहा कि उमर पर जब ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी आएगी, तो वे अपने आप नरम हो जाएँगे।
(अल-कामिल फ़ी अल-तारीख़, जिल्द 2, पेज नं० 425)

इस वाक़ये से अंदाज़ा होता है कि ग़लतफ़हमी कितनी ख़तरनाक चीज़ है। ग़लतफ़हमी की बिना पर आदमी एक शख़्स के बारे में बिलकुल उल्टी राय क़ायम कर लेता है। हालाँकि वह शख़्स इस ग़लत

राय से बिलकुल पाक होता है। इस क़िस्म की मनफ़ी (negative) राय ग़लतफ़हमी में मुब्तिला होने वाले के अपने दिमाग़ में होती है। बाहर की दुनिया में सिरे से इसका कोई वजूद नहीं होता। यह ग़लतफ़हमी बिला-शुब्हा एक संगीन क़िस्म का अख़्लाक़ी जुर्म है। हर आदमी पर लाज़िम है कि इस जुर्म से अपने आपको बचाए।

ग़लतफ़हमी से बचने के लिए सबसे ज़रूरी उपाय यह है कि आदमी महज़ सुनकर किसी बात पर यक़ीन न करे। सुनी हुई बात अकसर ग़लत होती है। किसी मामले की सही रिपोर्ट देना बेहद मुश्किल काम है। ऐसे लोग हमेशा बहुत कम होते हैं, जो किसी वाक़ये को ठीक वैसा ही बयान करें, जैसा कि वह है। अगर एक आदमी के दिल में दूसरे आदमी के ख़िलाफ़ ग़लतफ़हमी पैदा हो जाए, तो फ़र्ज़ के दर्जे में ज़रूरी है कि ग़लतफ़हमी में मुब्तिला होने वाला शख़्स उस आदमी से मिले और ख़ुद साहिब-ए-मामला से तहक़ीक़ करे। बराहे-रास्त तहक़ीक़ के बग़ैर किसी के बारे में बुरी राय क़ायम करना सख़्त गुनाह है।

जो आदमी ग़लतफ़हमी में मुब्तिला हो उसके ऊपर यह फ़र्ज़ है कि उसने जिस तरह किसी के बारे में एक बुरी राय क़ायम की है, उसी तरह वज़ाहत के बाद वह इस बुरी राय को अपने दिमाग़ से निकाले और अपनी ग़लती का खुला एतिराफ़ करते हुए अपने ज़हन की इस्लाह कर ले। जिस आदमी के अंदर ग़लती के एतिराफ़ का माद्दा न हो, उसके लिए यह भी जायज़ नहीं कि वह किसी के बारे में ग़लत राय को अपने ज़हन में जगह दे।

तजुर्बा बताता है कि ग़लतफ़हमी अकसर हालात में बे-बुनियाद होती है। आदमी एकतरफ़ा रिपोर्ट या नाक़िस मालूमात की बुनियाद पर एक बुरी राय क़ायम कर लेता है। हालाँकि अगर खुले ज़हन के साथ तहक़ीक़ की जाए, तो मालूम होगा कि वहाँ सिरे से ऐसी कोई चीज़ मौजूद ही न थी।

आदमी को चाहिए कि वह या तो उतना बा-शऊर बने कि वह बातों को गहराई के साथ समझ ले, उसका ज़हन अपने आप ही ग़लतफ़हमी को अपने अंदर जगह देने से इनकार कर दे और अगर कोई आदमी इतना ज़्यादा बा-शऊर न हो, तो इंसानियत का दूसरा दर्जा यह है कि वह ग़लतफ़हमी में पड़ने से पहले बराहे-रास्त तौर पर इसकी मुकम्मल तहक़ीक़ करे। वह उस वक़्त तक हरगिज़ किसी बात को न माने, जब तक वह तहक़ीक़ की तमाम शर्तों के साथ उसका जायज़ा न कर चुका हो।

तीसरी क़िस्म के लोग वे हैं, जो हर बुरी बात को सुनते ही उसे मान लें। ऐसे लोग बिला-शुब्हा इस्लाम से दूर हैं, ख़्वाह बतौर ख़ुद वे अपने आपको इस्लाम के आला मेयार पर समझते हों।

ग़लतफ़हमी दरअसल नाक़िस मालूमात की बुनियाद पर कामिल राय क़ायम करने का दूसरा नाम है। अकसर औक़ात ऐसे होते हैं कि एक आदमी किसी के बारे में एक-आधी बात बात सुनता है और इससे वह उस आदमी की कुल्ली तस्वीर बना लेता है। कभी किसी का क़ौल उसके कॉण्टेक्स्ट से अलग होकर सामने आता है और पूरे कॉण्टेक्स्ट की रोशनी में देखे बग़ैर एक ऐसी राय क़ायम कर ली जाती है, जिसका हक़ीक़त से कोई ताल्लुक़ नहीं होता। कभी किसी आदमी के एक ज़ाहिरी पहलू को देखकर उसके बातिन के बारे में एक नज़रिया बना लिया जाता है। कभी किसी सुनी हुई बात को ठीक वैसा ही मान लिया जाता है, हालाँकि मुख़्तलिफ़ रावियों से गुज़रकर वह बात आख़िरकार एक ऐसी शक्ल इख़्तियार कर लेती है, जिसका असल वाक़ये से कोई ताल्लुक़ नहीं होता। कभी ऐसा होता है कि आदमी के इल्म में एक बात आती है और वह ख़ुद-साख़्ता ताबीर के ज़रिये उसका एक मफ़हूम मुतय्यन कर लेता है, हालाँकि यह ताबीर असल हक़ीक़त के बिलकुल ख़िलाफ़ है।

इस क़िस्म की मुख़्तलिफ़ सूरते हैं, जो ग़लतफ़हमी का सबब बनती हैं। ग़लतफ़हमी का यह मामला इतना ज़्यादा वसीअ है कि इंतिहाई सालेह अफ़राद भी इसकी ज़द से बचे हुए नहीं। अकसर ऐसा हुआ है कि लोगों ने किसी के ख़िलाफ़ इंतिहाई भयानक क़िस्म की राय क़ायम कर ली, हालाँकि उसके पीछे बे-बुनियाद ग़लतफ़हमी के सिवा और कुछ न था।

ऐसी हालत में ग़लतफ़हमी के गुनाह से बचने की वाहिद सूरत यह है कि आदमी किसी के ख़िलाफ़ राय क़ायम करने में सख़्त मोहतात हो। वह मुकम्मल तहक़ीक़ के बग़ैर कभी ऐसी कोई राय क़ायम न करे। आदमी को चाहिए कि वह या तो सिरे से किसी के बारे में कोई राय ही क़ायम न करे और अगर राय क़ायम करना ज़रूरी हो, तो उसकी तहक़ीक़ का हक़ अदा करे। राय क़ायम न करने पर किसी की कोई पकड़ नहीं, मगर राय क़ायम करते ही आदमी ख़ुदा की पकड़ की ज़द में आ जाता है। राय क़ायम न करने वाला माज़ूर क़रार दिया जा सकता है, मगर मुख़ालिफ़ाना राय क़ायम करते ही इसका उज़्र ख़त्म हो जाता है। अब उसका मामला यह हो जाता है कि या तो वह दूसरे के बारे में अपनी मुख़ालिफ़ाना राय को दलील से साबित करे या ख़ुद उसी चीज़ का मुजरिम बने, जिसका इल्ज़ाम वह बे-बुनियाद तौर पर दूसरे को देना चाहता था।

ग़लतफ़हमी या बद-गुमानी कोई सादा बात नहीं। यह बेहद ज़िम्मेदारी की बात है। अगर आप किसी के ख़िलाफ़ बुरा गुमान कर लें, तो आप अपने आपको इस ख़तरे में मुब्तिला कर रहे हैं कि अगर फ़रीक़-ए-सानी बुरा न हो, तो ख़ुदा की नज़र में आप ख़ुद उसी बुराई के ज़िम्मेदार क़रार पाएँ, जिसका ज़िम्मेदार आप दूसरे को समझे हुए थे।

एक रिवायत के मुताबिक़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अल्लाह अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

لَا يَرْمِي رَجُلٌ رَجُلًا بِالْفُسُوقِ وَلَا يَرْمِيهِ بِالْكُفْرِ
إِلَّا ارْتَدَّتْ عَلَيْهِ إِنْ لَمْ يَكُنْ صَاحِبُهُ كَذَلِكَ.

"जब कोई शख़्स किसी के ऊपर फ़िस्क़ का इल्ज़ाम लगाए या उसके ऊपर कुफ़्र का इल्ज़ाम लगाए, तो इसका इल्ज़ाम ख़ुद उसी की तरफ़ लौट आएगा, अगर दूसरा शख़्स वैसा न हो।"
(सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6045)

बे-बुनियाद ग़लतफ़हमी भी बिला-शुब्हा एक इल्ज़ाम की हैसियत रखती है। वह किसी के बारे में एक ऐसी ग़लतफ़हमी में मुब्तिला होना है, जो बा-एतिबार-ए-वाक़या दुरुस्त नहीं। ऐसी हालत में ग़लतफ़हमी या बदगुमानी से बचना ख़ुद अपने फ़ायदे के लिए ज़रूरी हो जाता है। वह आदमी का ख़ुद अपना मसला बन जाता है, क्योंकि फ़रीक़-ए-सानी में अगर वह बुराई न हो, तो ख़ुद बद-गुमानी करने वाला उसका मुजरिम क़रार पाएगा।

यह हदीस-ए-रसूल बेहद संगीन है। इसका तक़ाज़ा है कि आदमी ग़लतफ़हमी या बद-गुमानी के मामले में आख़िरी हद तक संजीदा हो जाए। ग़लतफ़हमी अगर सादा नौइयत की हो, मसलन आप किसी के बारे में यह राय क़ायम करें कि वह जल्द ग़ुस्सा हो जाता है, तो इसमें उसके लिए कोई बड़ा ख़तरा नहीं, लेकिन अगर किसी के बारे में ग़लतफ़हमी की बिना पर ऐसी संगीन राय क़ायम कर ली जाए, जो अख़्लाक़ी या शरई जुर्म की हैसियत रखती हो, तो ऐसी सूरत में मामला बेहद संगीन हो जाएगा। ऐसी संगीन ग़लतफ़हमी गोया दो-धारी तलवार है। वह अगर फ़रीक़-ए-सानी को न काटे, तो ख़ुद आपकी हलाकत का सबब बन जाएगी।

हर आदमी को जानना चाहिए कि वह जो कुछ राय क़ायम करता है, अपनी मालूमात के दायरे में करता है। अब चूँकि हक़ायक़ का दायरा

किसी शख़्स की ज़ाती मालूमात से बहुत ज़्यादा वसीअ है, इसलिए हर वक़्त यह इमकान है कि अपनी मालूमात के दायरे में वह एक राय को सही समझ ले। हालाँकि वसीअ-तर हक़ायक़ के एतिबार से उसकी राय सही न हो। इसलिए आदमी को चाहिए कि जब दूसरे के बारे में राय क़ायम करनी हो, तो ख़ुश-गुमानी के मामले में वह हद दर्जा फ़य्याज़ बन जाए और बदगुमानी के मामले में हद दर्जा बख़ील। यही अक़्ल का तक़ाज़ा भी है और यही ख़ुदा के ख़ौफ़ का तक़ाज़ा भी।

कायनाती कल्चर

मेल-मिलाप कोई सादा बात नहीं। वह हर क़िस्म की इंसानी तरक़्क़ी का ज़ीना है। जिस समाज में लोगों के दरमियान मिलना-जुलना न हो, वहाँ हर एक महदूद होकर रह जाएगा। कोई भी शख़्स या गिरोह ज़्यादा आगे बढ़ने में कामयाब नहीं होगा। मेल-मिलाप फ़ितरत का क़ानून है। यह सारी कायनात में हर तरफ़ जारी है। दरख़्त एक-दूसरे से नहीं मिल सकते, तो ख़ुदा ने उनके दरमियान हवाएँ चला दीं, जिसके ज़रिये वे एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। ख़ला के सितारे एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। उनका आपस में जिस्मानी तौर पर मिलना मुमकिन नहीं, तो ख़ुदा ने उन्हें रोशनी दे दी। चुनाँचे वे रोशनी के ज़रिये एक-दूसरे से वाबस्ता हो जाते हैं। पहाड़ की चोटियों से जारी होने वाले चश्मे समंदर से बहुत दूर थे, मगर ख़ुदा ने उनके लिए बहाव की सूरत पैदा कर दी। इस तरह यह चश्मे दरियाओं में बहते हुए समंदर में जाकर मिल जाते हैं।

मेल-मिलाप एक यूनिवर्सल कल्चर है। यही यूनिवर्सल कल्चर इंसान को भी इख़्तियार करना है। क़ुरआन के मुताबिक़, बक़िया कायनात का निज़ाम आपसी टकराव के बग़ैर दुरुस्त तौर पर बाहमी

हम-आहंगी के ज़रिये चल रहा है (36:40)। ठीक इसी तरह इंसानी ज़िंदगी का निज़ाम भी दुरुस्त तौर पर उस वक़्त चल सकता है, जबकि इंसान भी इस कायनाती कल्चर को इख़्तियार करे।

दो इंसान या ज़्यादा इंसान जब बाहम मिलते हैं, तो यह पत्थरों का बाहम मिलना नहीं होता, बल्कि यह ऐसी मख़्लूक़ का मिलना होता है, जिसके अंदर अक़्ल और जज़्बात की सलाहियतें मौजूद हैं। इसका नतीजा यह होता है कि इंसानों का आपस में मिलना-जुलना मुख़्तलिफ़ क़िस्म के अज़ीम फ़ायदों का सबब बन जाता है। इस तरह बाहमी मोहब्बत बढ़ती है। यह अमल ज़हनी इर्तिक़ा में मददगार बनता है। लोग एक-दूसरे के तजुर्बात से नई-नई बातें सीखते हैं। हर फ़र्द इंसानियत के मज्मूई ख़ज़ाने में हिस्सेदार बन जाता है। मेल-मिलाप सिर्फ़ एक समाजी सुलूक नहीं। वसीअतर मअनों में वह ज़िंदगी की एक अज़ीमतर हिकमत है। इस हक़ीक़त की तरफ़ एक हदीस-ए-रसूल में इस तरह इशारा किया गया है कि वह मोमिन, जो लोगों से मेल-जोल रखता है और उनकी अज़ीयत पर सब्र करता है, वह अज्र में उससे ज़्यादा है, जो ऐसा नहीं करता।

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 5022)

क्राइटेरियन का मसला

क्राइटेरियन (criterion) क्या है? एक उसूल या मेयार या जाँच, जिसकी बुनियाद पर कोई राय क़ायम की जा सकती हो या फ़ैसला किया जा सकता हो।

A principle or standard or test by which something may be judged or decided.

क्राइटेरियन का मसला बेहद अहम मसला है। बेशतर फ़िक्री गुमराहियाँ सिर्फ़ इसलिए पैदा होती हैं कि लोगों के ज़हन में क्राइटेरियन वाज़ेह नहीं होता। अकसर ऐसा होता है कि आदमी अपने आपको सही समझ रहा होता है, हालाँकि जिस क्राइटेरियन से वह अपनी बात को जाँचता है, वह ग़लत क्राइटेरियन होता है। अगर वह अपनी बात को दुरुस्त क्राइटेरियन पर जाँचे, तो वह जान लेगा कि उसकी सोच सद फ़ीसद ग़लत है।

मिसाल के तौर पर ख़लीफ़ा-ए-अव्वल हज़रत अबू बक्र ने जब हज़रत उमर फ़ारूक़ को अमीरुल मोमिनीन मुक़र्रर किया, तो बेशतर सहाबा इस राय से इत्तिफ़ाक़ न कर सके। उनका कहना यह था कि उमर एक सख़्त-गीर इंसान हैं और सख़्त-गीर इंसान को अमीरुल मोमिनीन नहीं होना चाहिए। हज़रत अबू बक्र ने इसका जवाब देते हुए कहा कि यह सही है कि वे सख़्त-गीर हैं, मगर उनकी सख़्ती इसलिए थी कि मैं नरम था। मैं तुम लोगों का ख़लीफ़ा उस शख़्स को बना रहा हूँ, जो ख़िलाफ़त के लिए सबसे अहल है।

(अल-कामिल फ़ी अल-तारीख़, जिल्द 2, पेज नं० 266-67)

इससे मालूम हुआ कि जो लोग उमर फ़ारूक़ की इमारत के मुख़ालिफ़ थे, वे अपनी राय के हक़ में ग़लत क्राइटेरियन इस्तेमाल कर रहे थे। अमीर के लिए असल क्राइटेरियन यह नहीं है कि वह सख़्त है या नरम। इसके बजाय असल क्राइटेरियन यह है कि वह अक़्लमंद इंसान हो। वह ख़ुदा से डरने वाला हो। वह कमज़ोर शख़्सियत का मालिक न हो। वह हक़ और ना-हक़ में फ़र्क़ करना जानता हो।

सही क्राइटेरियन के एतिबार से देखा जाए, तो मालूम होगा कि ख़िलाफ़त के लिए हज़रत उमर फ़ारूक़ का इंतिख़ाब निहायत दुरुस्त था। इसके बरअक्स अगर इस मामले को ग़लत क्राइटेरियन से देखा जाए, तो एक शख़्स कहेगा कि ख़िलाफ़त के लिए उमर फ़ारूक़ का

इंतिख़ाब दुरुस्त न था, क्योंकि उनके मिज़ाज में बहुत ज़्यादा शिद्दत थी। हालाँकि यह क्राइटेरियन ही इस मामले में बजा-ए-ख़ुद दुरुस्त नहीं। जैसा काम हो, वैसी ही अहलियत दरकार होती है।

हक़ीक़त-पसंदी

अगर आप मैदान में हों और बारिश आ जाए, तो आप भागकर साये के नीचे चले जाते हैं। यह पीछे हटना नहीं है, बल्कि हक़ीक़त-पसंदी है। इसी तरह अगर ज़लज़ला आ जाए, तो आप घर से निकलकर खुले मैदान में आ जाते हैं। यह भी पीछे हटना नहीं है, बल्कि एक फ़ितरी हक़ीक़त का एतिराफ़ है। जहाँ इंसान का और फ़ितरत का मामला हो, वहाँ मसले का हल सिर्फ़ एतिराफ़ होता है, न कि टकराव।

बारिश और ज़लज़ले का निज़ाम जो ख़ालिक़-ए-फ़ितरत ने दुनिया में रख दिया है, इंसान उसे बदलने पर क़ादिर नहीं। इंसान सिर्फ़ यह कर सकता है कि अपने आपको उसके नुक़सान से बचाने की मंसूबाबंदी करे और उसके नुक़सान से बचने का वाहिद तरीक़ा यह है कि एराज़ का उसूल इख़्तियार करते हुए अपने आपको उसकी ज़द से हटा दिया जाए, इसीलिए आप बारिश के वक़्त साये में आ जाते हैं और ज़लज़ले के वक़्त मैदान में।

ठीक यही मामला सब्र और एराज़ के उसूल का भी है। सब्र और एराज़ का रवैया किसी क़िस्म की बुज़दिली या पसपाई नहीं है। वह सादा तौर पर सिर्फ़ हक़ीक़त-पसंदी है। इसकी ज़रूरत इसलिए है कि ख़ालिक़-ए-फ़ितरत ने इंसान को इम्तिहान की ग़रज़ से आज़ादी अता की है। इंसान अपनी आज़ादी का इस्तेमाल कभी सही करता है और कभी ग़लत। अब आप क्या करें? अगर आप हर इंसान से

लड़ने लगें, तो लोगों से आप उनकी आज़ादी छीन नहीं सकते, क्योंकि यह आज़ादी उन्हें ख़ुद मालिक-ए-कायनात ने दे रखी है। लोगों की आज़ादी छीनने की बेफ़ायदा कोशिश का नतीजा सिर्फ़ यह होगा कि आप अपने नुक़सान में इज़ाफ़ा कर लेंगे।

ऐसी हालत में सिर्फ़ एक ही मुमकिन रवैया है और वह वही है, जिसे सब्र (patience) कहा जाता है यानी लोगों की तरफ़ से अगर कभी तल्ख़ी और नागवारी पेश आ जाए, तो इससे एराज़ करते हुए अपना सफ़र-ए-हयात जारी रखा जाए।

सब्र व एराज़ दूसरों का मसला नहीं, वह ख़ुद अपना मसला है। बेसब्री आदमी के सफ़र को रोक देती है और सब्र इस बात को मुमकिन बनाता है कि आदमी की ज़िंदगी का सफ़र कामयाबी के साथ जारी रहे, यहाँ तक कि वह अपनी मंज़िल-ए-मक़सूद पर पहुँच जाए।

निज़ाम-ए-फ़ितरत

एक शायर का शेर है। अपने इन शेरों में उसने निहायत सादा तौर पर ज़िंदगी की हक़ीक़त बता दी है। वह शेर यह है—

“कहा— ‘क्या ऊँट पर बैठूँ?’
कहा— ‘हाँ, ऊँट पर बैठो।’
कहा— ‘कोहान का डर है।’
कहा— ‘कोहान तो होगा।’
कहा— ‘क्या दरिया में उतरूँ?’
कहा— ‘हाँ, दरिया में उतरो।’
कहा— ‘तूफ़ान का डर है।’

कहा— 'तूफ़ान तो होगा।'

कहा— 'क्या फूल को तोड़ूँ?'

कहा— 'हाँ, फूल को तोड़ो।'

कहा— 'पर ख़ार का डर है।'

कहा— 'पर ख़ार तो होगा'।"

यही मौजूदा दुनिया में ज़िंदगी की हक़ीक़त है। यहाँ ऊँट है, तो कोहान भी है। यहाँ हमवार पीठ वाला कोई ऊँट मौजूद नहीं। यहाँ दरिया में तूफ़ान का मसला भी है। यहाँ कोई ऐसा दरिया नहीं पाया जाता, जिसमें सुकून-ही-सुकून हो, तमव्वुज (waves) नाम की कोई चीज़ वहाँ मौजूद न हो। इसी तरह यहाँ ख़ुदा के उगाए हुए बाग़ में अगर ख़ूबसूरत फूल हैं, तो इसी के साथ ख़ार (नोकदार) काँटे भी।

इसका मतलब यह है कि इस दुनिया में जो आदमी कोई चीज़ हासिल करने का ख़्वाहिशमंद हुआ, उसे पेशगी तौर पर यह जान लेना चाहिए कि यहाँ तरक़्क़ी का सफ़र कभी हमवार रास्तों से तय नहीं होता। यहाँ मसाइल पर क़ाबू पाने के बाद ही किसी आदमी के लिए कामयाबी के दरवाज़े खुलते हैं। जो आदमी मसाइल व मुश्किलात का सामना करने का हौसला न रखता हो, उसे ख़ुदा की इस दुनिया में किसी क़िस्म की कामयाबी की उम्मीद भी न रखना चाहिए।

ख़ुदा की दुनिया वैसी ही रहेगी, जैसा कि इसे बनाया गया है। इसे बदलना यक़ीनी तौर पर हमारे लिए मुमकिन नहीं। ऐसी हालत में किसी इंसान के लिए यहाँ ज़िंदगी और कामयाबी की सिर्फ़ एक सूरत है, दुनिया में क़ायमशुदा निज़ाम-ए-फ़ितरत से वह अपने आपको हम-आहंग कर ले। इसके सिवा हर दूसरी सूरत आदमी की नाकामी में इज़ाफ़ा करने वाली है, न कि उसे कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाने वाली।

नए साल का पैग़ाम

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने अपनी डायरी में एक हकिमाना क़ौल इन अल्फ़ाज़ में लिखा है—

"सुबह हर एक के लिए आती है, मगर रोशन सुबह को सिर्फ़ वह शख़्स देखता है, जो सुबह के वक़्त अपनी आँखें खुली रखे। जो आदमी अपनी आँखें बंद कर ले, उसके लिए कोई सुबह नहीं।"

यह उसूल मौजूदा दुनिया के हर इंसान के लिए है और हर एक फ़ील्ड के लिए। सुबह को देखने का मतलब है— मवाक़े को पाकर उसे अवेल (avail) करना। नया साल गोया ख़ुदा की तरफ़ से 365 दिनों का नया मौक़ा है, मगर जिस तरह दूसरी चीज़ों की क़ीमत अदा करनी पड़ती है, इसी तरह ख़ुदा के दिए हुए मवाक़े को अवेल करने की भी एक क़ीमत (price) है। वह क़ीमत क्या है? मुख़्तसर अल्फ़ाज़ में यह क़ीमत है— अपने आपको एक सिंसियर (sincere) इंसान बनाना, ज़िंदगी के हकीमाना उसूलों को अपनाना और ग़ैर-हकीमाना रविश को तर्क करना। इसकी वज़ाहत के लिए नीचे मौलाना वहीदउद्दीन ख़ान साहब की कुछ तहरीरें पेश की जा रही हैं।

मौलाना फ़रहाद अहमद

इंसान की ख़ुसूसियत

इंसान एक जानदार मख़्लूक़ है। साइंसी मुताले के मुताबिक़, मौजूदा दुनिया में अंदाज़े के मुताबिक़ तक़रीबन एक ट्रिलियन (one trillion) की तादाद में जानदार मख़्लूक़ (living beings) पाई

जाती हैं। इन तमाम जानदार चीज़ों में इंसान एक ख़ुसूसी हैसियत रखता है, बाक़ी तमाम चीज़ें कामिल तौर पर क़ानून-ए-फ़ितरत (law of nature) की पाबंद हैं। पूरी दुनिया में इंसान एक वाहिद मख़्लूक़ है, जिसे कामिल आज़ादी मिली हुई है। वह ख़ुद अपने इख़्तियार से अपने अमल का इंतिख़ाब करता है। इसी इम्तियाज़ी सिफ़त को क़ुरआन में 'ख़िलाफ़त' (2:30) और 'अमानत' (33:72) कहा गया है।

अपनी तामीर आप

'हिंदुस्तान टाइम्स' (2 जनवरी, 1993) में पेज नंबर 11 पर मिस्टर जे०एस० यादव का मज़मून है। इसकी सुर्ख़ी मुझे पसंद आई। इसके अल्फ़ाज़ ये हैं—

मुसीबत को मवाक़े में तब्दील कर लेना।
Turning adversity into an opportunity.

यही ज़िंदगी की हक़ीक़त है। इस दुनिया में मुसीबतें और दुश्वारियाँ बहरहाल पेश आती हैं। इन मुसीबतों और दुश्वारियों के ख़िलाफ़ एहतिजाज़ करने से कोई फ़ायदा नहीं, करने का काम सिर्फ़ यह है कि मुसीबतों को मवाक़ेकार में तब्दील कर लिया जाए।

मुसीबत को मवाक़े में कैसे तब्दील किया जा सकता है? इंसानी समाज के एतिबार से इसका रहनुमाना उसूल क़ुरआन की एक आयत में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया—

وَإِنْ تَصْبِرُوا وَتَتَّقُوا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ شَيْئًا.

"अगर तुम सब्र करो और तक़्वे की रविश इख़्तियार करो, तो दूसरों की साज़िश तुम्हें कुछ भी नुक़सान नहीं पहुँचाएगी।" (3:120)

क़ुरआन की यह आयत फ़ितरत के एक क़ानून को बताती है। इससे मालूम होता है कि इस दुनिया में साज़िश (conspiracy) का होना असल मसला नहीं है, बल्कि असल मसला सब्र और तक़्वे का न होना है। जिन लोगों के अंदर सब्र और तक़्वे की सिफ़त मौजूद हो, उनके लिए दूसरों की साज़िश और दुश्मनी ग़ैर-मुअस्सर होकर रह जाएगी, वह उन्हें कुछ भी नुक़सान न पहुँचा सकेगी।

सब्र कोई निष्क्रियता (inaction) नहीं है। सब्र का मतलब वह आला इंसानी सिफ़त है, जिसे सेल्फ कंट्रोल (self control) कहा जाता है यानी दूसरों के पैदा-कर्दा मसाइल से ऊपर उठकर सोचना और ख़ुद अपनी मुस्बत सोच के तहत अपनी ज़िंदगी का मंसूबा बनाना। तक़्वे का मतलब यह है कि आदमी की सोच 'ख़ुदरुख़ी सोच' (self-oriented thinking) न हो, बल्कि वह 'ख़ुदारुख़ी सोच' (God-oriented thinking) हो। समाज के अंदर उसका सुलूक ख़ुदा की तालीमात के मुताबिक़ हो, न कि अपनी ख़्वाहिशात और जज़्बात के मुताबिक़। जो लोग सब्र और तक़्वे की इस रविश को इख़्तियार करें, उनके ख़िलाफ़ दूसरों की मनफ़ी कार्रवाइयाँ अपने आप बे-असर हो जाएँगी, क्योंकि इस दुनिया का क़ानून यह है कि कोई भी ग़ैर-मतलूब वाक़या हमेशा दोतरफ़ा कार्रवाई के नतीजे में पेश आता है, न कि सिर्फ़ एकतरफ़ा कार्रवाई के नतीजे में।

यह फ़ितरत का एक क़ानून है कि कोई शख़्स या गिरोह मोतदिल ज़हन के तहत किसी के ख़िलाफ़ कोई मुख़ालिफ़ाना कार्रवाई नहीं

करता। एक शख़्स या गिरोह किसी दूसरे के ख़िलाफ़ कोई मनफ़ी कार्रवाई सिर्फ़ उस वक़्त करता है, जबकि उसे भड़का दिया गया हो। हर मनफ़ी कार्रवाई किसी इश्तिआल-अंगेज़ कार्रवाई के नतीजे में जवाबी तौर पर पेश आती है। सब्र और तक़्वा आदमी को इससे रोकता है कि वह किसी दूसरे शख़्स या गिरोह के ख़िलाफ़ इश्तिआल-अंगेज़ कार्रवाई करे। यही वजह है कि सब्र और तक़्वा किसी शख़्स या गिरोह के लिए हिफ़ाज़त का यक़ीनी ज़रिया है। ऐसा शख़्स या गिरोह किसी भी हाल में दूसरे को ग़ुस्सा दिलाने वाला काम नहीं करेगा, इसलिए फ़ितरी तौर पर वह दूसरे की तरफ़ से पेश आने वाली जवाबी कार्रवाई से भी महफ़ूज़ रहेगा।

यह फ़ितरत का क़ानून है, जिसे ख़ुद ख़ालिक़-ए-फ़ितरत ने मुक़र्रर किया है। ऐसी हालत में साज़िश के ख़िलाफ़ चीख़-ओ-पुकार करना एक बेफ़ायदा काम है। करने का असल काम यह है कि ख़ुद अपने आपको दाख़िली तौर पर मज़बूत बनाया जाए, ख़ुद अपने अंदर ज़्यादा-से-ज़्यादा सब्र और तक़्वे की स्पिरिट पैदा की जाए। इसके बाद शिकायत के अस्बाब इस तरह ख़त्म हो जाएँगे, जैसे कि वे थे ही नहीं।

ख़ुदा के तख़्लीक़ी प्लान (creation plan of God) के मुताबिक़, ज़िंदगी में हमेशा दो मुख़्तलिफ़ क़िस्म की चीज़ें मौजूद रहती हैं— मसाइल (problems) और मवाक़े (opportunities)। जिस तरह ज़िंदगी में हमेशा मसाइल मौजूद रहते हैं, उसी तरह ज़िंदगी में हमेशा मवाक़े भी मौजूद रहते हैं। ऐसी हालत में दानिशमंदी का तरीक़ा, इस्लाम के मुताबिक़, यह है कि मसाइल को नज़र-अंदाज़ किया जाए और मवाक़े को इस्तेमाल किया जाए।

Ignore the problems, avail the opportunities.

मसाइल से उलझना सिर्फ़ उस वक़्त को ज़ाए करना है, जो इस दुनिया में हमें ज़िंदगी की मुस्बत तामीर के लिए मिला हुआ है। यही दानिशमंदी है और यही इस्लाम का तरीक़ा भी।

मवाक़े की दुनिया

नई दिल्ली के अंग्रेज़ी अख़बार 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में 14 सितंबर (2007) को एक रिपोर्ट छपी थी। इस रिपोर्ट का एक जुज़ यहाँ दर्ज किया जा रहा है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि इंडिया के एक मुसलमान अज़ीम हाशिम प्रेमजी (पैदाइश : 1945) इस वक़्त 2007 में पूरी दुनिया में सबसे ज़्यादा दौलतमंद मुसलमान हैं। इस मामले में सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-ग़ौर बात यह है कि यह वाक़या इंडिया में हुआ, जहाँ के बारे में आम तौर पर मुसलमान यह समझते हैं कि वे यहाँ महरूमी की ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं।

Azim Premji richest Muslim tycoon: New York: India's software czar Azim Premji now has a new nomenclature - the world's richest Muslim entrepreneur - as he holds more wealth than any other Muslim outside the Persian Gulf royalty, a US media report said. (The Times of India, New Delhi, September 14, 2007, p. 25)

अज़ीम हाशिम प्रेमजी के इस वाक़ये पर ग़ौर कीजिए, तो इससे एक बहुत बड़ी हक़ीक़त का इल्म हासिल होता है। यह इनफ़िरादी वाक़या एक आलमी क़ानून को बता रहा है। वह यह कि यह दुनिया मवाक़े (opportunities) की दुनिया है। इस दुनिया में मवाक़े इतने

ज़्यादा हैं कि वे किसी भी हाल में ख़त्म नहीं होते (सूरह अल-इनशिराह, 94:5-6)। कोई भी शख़्स या गिरोह इतना ताक़तवर नहीं कि वह फ़ितरत के इस क़ानून को बदल सके या वह इस क़ानून को मंसूख़ कर दे। यह फ़ितरत का एक अबदी क़ानून है। वह क़ुरआन की आयत के उमूमी हुक्म में शामिल है—

لَا تَبۡدِيلَ لِكَلِمَٰتِ ٱللَّهِ.

"अल्लाह रब्बुल आलमीन की बातों में कोई तब्दीली नहीं है।"
(10:64)

The Word of God shall never change.

मुक़ाबले की दुनिया

एक हिंदुस्तानी नौजवान बिज़नेस के लिए बाहर के एक मुल्क में गए। यह बैरून-ए-मुल्क के लिए उनका पहला सफ़र था। दो हफ़्तों के बाद वे अपने सफ़र से वापस आए। मैंने पूछा कि आपने अपने इस बैरूनी सफ़र में सबसे बड़ा तजुर्बा क्या हासिल किया? उन्होंने एक लम्हा सोचा और उसके बाद कहा— "यह कि आज की दुनिया में अना के लिए जगह नहीं।"

Ego has no place in today's world.

यह बेहद अहम बात है। एक आदमी जब पैदा होता है, तो वह अपने घर के माहौल में, लाड़-प्यार (pampering) के माहौल में रहता है। वह महसूस करता है कि घर के अंदर उसकी शख़्सियत ही मरकज़ी शख़्सियत है। दूसरे लोग वही करते हैं, जो वह चाहे। घर के माहौल में उसकी अना (ego) ही मरकज़ी शख़्सियत का दर्जा रखती है, लेकिन जब वह घर से बाहर निकलता है, तो अचानक उसे महसूस होता है कि

यहाँ बिलकुल मुख़्तलिफ़ माहौल है। यहाँ मुकम्मल तौर पर मुक़ाबला और मुसाबक़त (competition) का माहौल है। यहाँ जो कुछ किसी को मिलता है, वह उसके ज़ाती जौहर (merit) की बुनियाद पर मिलता है। इंसान के ज़ाती जौहर के सिवा किसी और चीज़ की यहाँ कोई क़ीमत नहीं। बाहर की दुनिया मुकम्मल तौर पर इस उसूल पर क़ायम है।

मुक़ाबला करके जियो या मर जाओ।

Compete, or perish.

यह ज़िंदगी की एक संगीन हक़ीक़त है। इस दुनिया में हर औरत और हर मर्द को इससे साबिक़ा पेश आता है। माँ-बाप की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी यह है कि वे अपनी औलाद को इस इम्तिहान के लिए तैयार करें। इस मामले में कोई भी दूसरी चीज़ 'ज़ाती तैयारी' (self-preparation) का बदल नहीं बन सकती। ज़ाती तैयारी ही वह चीज़ है, जो किसी आदमी को मुक़ाबले की इस दुनिया में कामयाब बना सकती है। मौजूदा दुनिया हक़ायक़ की बुनियाद पर चल रही है। ऐसी हालत में किसी ग़ैर-हक़ीक़ी बुनियाद पर कामयाबी का हुसूल इस दुनिया में मुमकिन नहीं।

वालिदैन की ज़िम्मेदारी

औलाद की तर्बियत न सिर्फ़ अफ़राद-साज़ी का अमल है, बल्कि यह समाज की तरक़्क़ी का सबसे बुनियादी क़दम है। तर्बियत-ए-औलाद के हवाले से एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है—

أَكْرِمُوا أَوْلَادَكُمْ وَأَحْسِنُوا أَدَبَهُمْ.

"अपनी औलाद के साथ बेहतर सुलूक करो और उन्हें अच्छा अदब सिखाओ।" (सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 3671)

इस हदीस में अदब-ए-हसन का मतलब ज़िंदगी का बेहतर तरीक़ा है यानी यह सिखाना कि बेटा या बेटी बड़े होने के बाद दुनिया में किस तरह रहें कि वे कामयाब हों, वे अपने घर और अपने समाज के लिए बोझ (liability) न बनें, बल्कि वे अपने घर और अपने समाज का सरमाया (asset) बन जाएँ।

वालिदैन अपने बच्चों को अगर लाड़-प्यार (pampering) करें, तो उन्होंने बच्चों को सबसे बुरा तोहफ़ा दिया और अगर वालिदैन अपने बच्चों को ज़िंदगी गुज़ारने का कामयाब तरीक़ा बताएँ और इसके लिए उन्हें तैयार करें, तो उन्होंने अपने बच्चों को बेहतरीन तोहफ़ा दिया। मसलन बच्चों में यह मिज़ाज बनाना कि वे दूसरों की शिकायत करने से बचें। वे हर मामले में अपनी ग़लती तलाश करें, वे अपनी ग़लती तलाश करके उसे दुरुस्त करें और इस तरह अपने आपको बेहतर इंसान बनाएँ। वे दुनिया में तवाज़ो (modesty) के मिज़ाज के साथ रहें, न कि फ़ख़्र और बरतरी के मिज़ाज के साथ। ज़िंदगी में उनका उसूल-ए-हयात यह हो कि वे हमेशा अपने आपको ज़िम्मेदार ठहराएँ, न कि दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराने की कोशिश करें। वे अपने वक़्त और अपनी ताक़त को सिर्फ़ मुफ़ीद कामों में लगाएँ।

वालिदैन को चाहिए कि वे अपने बच्चों को यह बताएँ कि अगर तुम ग़लती करोगे, तो इसकी क़ीमत तुम्हें ख़ुद अदा करनी होगी। कोई दूसरा शख़्स नहीं, जो तुम्हारी ग़लती की क़ीमत अदा करे। कभी दूसरों की शिकायत न करो। दूसरों की शिकायत करना अपने वक़्त को ज़ाए करना है। हमेशा मुस्बत अंदाज़ से सोचो, मनफ़ी सोच से मुकम्मल तौर पर अपने आपको बचाओ। बुरी आदतों से इस तरह डरो, जिस तरह कोई शख़्स साँप-बिच्छू से डरता है। वालिदैन को चाहिए कि वे अपनी औलाद को 'ड्यूटी कांशियस' (duty conscious) बनाएँ, न कि राइट कांशियस (right conscious)।

दरयाफ़्त, दरयाफ़्त, दरयाफ़्त

जापान की एक मिसाल है कि हर दिन कोई नई बात दरयाफ़्त (discover) करो, ख़्वाह सूई में धागा डालने का नया तरीक़ा ही क्यों न हो। यह मिसाल माद्दी दरयाफ़्तों के बारे में है। यही उसूल ज़्यादा बड़े पैमाने पर मारिफ़त (realization) और रूहानियत (spirituality) के मामले पर भी मुंतबिक़ होता है। रूहानियत और मारिफ़त कोई जामिद चीज़ नहीं। वह दरख़्त की मानिंद एक मुसलसल तरक़्क़ी-पज़ीर चीज़ (growing entity) है।

असल यह है कि इंसान के दिमाग़ में ला-महदूद सलाहियत मौजूद है। इंसानी दिमाग़ के बाहर जो हक़ायक़ की दुनिया (universe of facts) है, वह भी ला-महदूद है। ऐसी हालत में जो आदमी अपने ज़हन को मुसलसल तौर पर बेदार रखे और यकसूई के साथ ग़ौर-ओ-फ़िक्र करता रहे, वह हर दिन, बल्कि हर लम्हा नई हक़ीक़तों को दरयाफ़्त करता रहेगा। इसके लिए दरयाफ़्तों का ख़ज़ाना कभी ख़त्म न होगा। जिस तरह माद्दी ख़ुराक जिस्म की ग़िज़ा है, उसी तरह रूहानी दरयाफ़्तें मारिफ़त की ग़िज़ा हैं। मुसलसल माद्दी ख़ुराक जिस्म की ज़िंदगी की ज़मानत है। इस तरह मुसलसल रुहानी दरयाफ़्तें किसी इंसान के लिए मारिफ़त और रूहानियत की ज़िंदगी और इर्तिक़ा की ज़मानत हैं।

यह दरयाफ़्त गोया कि एक फ़िक्री प्रोसेस (intellectual process) है। इस प्रोसेस को मुसलसल तौर पर जारी रखने की शर्तें सिर्फ़ दो हैं—ग़ौर-ओ-फ़िक्र करना और अपने आपको डिस्ट्रैक्शन से बचाना। जिस आदमी के अंदर दो चीज़ें पाई जाएँ, वह ज़रूर दरयाफ़्तों वाला इंसान बन जाएगा। इसके बाद कोई भी चीज़ उसे नई-नई दरयाफ़्तों तक पहुँचने से रोकने वाली नहीं।

दरयाफ़्त रूह की ज़िंदगी है, दरयाफ़्त ज़हन के लिए ज़रिया-ए-इर्तिक़ा (intellectual development) है। दरयाफ़्त किसी इंसान को मुकम्मल इंसान बनाती है। दरयाफ़्त के बग़ैर कोई इंसान ऐसा ही है, जैसे रूह के बग़ैर जिस्म।

मसला नहीं हल

एक बार का वाक़या है। एक सफ़र में मैं एक फ़ैक्ट्री को देखने के लिए गया। मैं उनके मैनेजर के ऑफ़िस में बैठा हुआ था। उसी दौरान ऑफ़िस में फ़ैक्ट्री का एक कर्मचारी कमरे में दाख़िल हुआ। उसने कहा— "सर, पानी की सप्लाई रुक गई है। हमारा काम बंद हो गया है।" मैनेजर ने यह बात सुनी, तो उसने तक़रीबन चीख़कर कहा— "प्रॉब्लम मत लाओ, सोल्यूशन लाओ।" कर्मचारी वापस गया और कुछ देर के बाद दोबारा वापस आया। उसने कहा— "मैंने साथियों से मश्वरा किया, सबका कहना यह है कि कॉरपोरेशन के वाटर सप्लाई के बजाय, यहाँ बोरिंग करके ख़ुद अपने पानी का इंतिज़ाम होना चाहिए।" इसके बाद मैनेजर ने टेलीफ़ोन उठाया और किसी ठेकेदार से कहा कि हमारी फ़ैक्ट्री में बोरिंग की ज़रूरत है। आप आज ही इसका काम शुरू कर दें। अगले दिन फ़ैक्ट्री में पानी का ज़ाती इंतिज़ाम हो चुका था।

यही काम का सही तरीक़ा है। अगर आप किसी इदारे से वाबस्ता हैं या आप किसी कंपनी में काम कर रहे हैं, तो आपको जानना चाहिए कि आपका काम शिकायत करना नहीं है, बल्कि मसले का हल तलाश करना है। आप ज़िम्मेदारों के पास न शिकायत ले जाइए और न एहतिजाज। आप उनको बताइए कि मसले का हक़ीक़ी हल क्या है और फिर आप इदारे के एक मतलूब शख़्स बन जाएँगे।

अगर आप किसी इदारे से वाबस्ता हैं और आप वहाँ किसी बात को लेकर शिकायत करते हैं, तो इसका मतलब यह है कि आप वहाँ एक ग़ैर-जानिबदार शख़्स बनकर रह रहे हैं, लेकिन जब आप मसले का हल बयान करें, तो आप इदारे के एक मतलूब शख़्स बन जाते हैं। अब इदारा आपको ग़ैर की नज़र से नहीं देखेगा, बल्कि अपनी तंज़ीम के एक फ़र्द की हैसियत से देखेगा। यही ज़िंदगी का सही तरीक़ा है। इसी तरीक़े में आपकी अपनी कामयाबी भी है और इदारे की भी।

कामयाब ज़िंदगी का राज़ यह है कि आदमी अपने आपको दूसरों की ज़रूरत बना दे। वह दूसरों के लिए सरमाया (asset) बन जाए, न कि बोझ (liability)। यही इस दुनिया में कामयाबी का वाहिद तरीक़ा है। इसके सिवा इस दुनिया में कामयाबी का कोई और तरीक़ा नहीं।

बा-उसूल ज़िंदगी

दुनिया का निज़ाम इस तरह बना है कि यहाँ हमेशा एक को दूसरे से इख़्तिलाफ़ पेश आता है। यह इख़्तिलाफ़ मबनी बर-फ़ितरत है, इसलिए इसे कभी ख़त्म नहीं किया जा सकता। ऐसी हालत में कामयाब ज़िंदगी का उसूल सिर्फ़ एक है, वह यह कि लोगों के साथ एडजस्ट (adjust) करके ज़िंदगी गुज़ारी जाए। इख़्तिलाफ़ को नज़र-अंदाज़ करके बाहमी मफ़ाद (mutual interest) की बुनियाद पर ज़िंदगी का निज़ाम क़ायम किया जाए। इस दुनिया में इसके सिवा कोई इंतिख़ाब (option) किसी के लिए मुमकिन नहीं।

इस मामले में मुसलमानों का मामला दूसरों से अलग नहीं है। अलबत्ता मुसलमानों को इस मामले में एक इम्तियाज़ी ख़ुसूसियत

हासिल है। दूसरों के लिए यह एडजस्टमेंट सिर्फ़ मफ़ाद (interest) का एक मामला है, मगर मुसलमान के लिए यह मामला साबिराना रविश की बिना पर एक आला इबादत का मामला बन जाता है।

इस फ़र्क़ का सबब यह है कि मुसलमान का एडजस्टमेंट (adjustment) एक उसूल के तहत होता है, जबकि दूसरों का एडजस्टमेंट सिर्फ़ दुनियावी मफ़ाद के तहत पेश आता है। मुसलमान अपनी हैसियत के एतिबार से एक ख़ुदाई मिशन के हामिल हैं यानी ख़ुदा के अबदी पैग़ाम को दूसरे तमाम इंसानों तक पहुँचाना। पैग़ाम-रसानी का यह काम सिर्फ़ उस वक़्त दुरुस्त तौर पर अंजाम पा सकता है, जबकि मुसलमानों और ग़ैर-मुसलमान क़ौमों के दरमियान ख़ुशगवार ताल्लुक़ात क़ायम हों। मुसलमान जब दूसरी क़ौमों के साथ एडजस्टमेंट का मामला करता है, तो उसका मुहर्रिक (incentive) उसका यही दावती ज़हन होता है। वह ज़ाती मफ़ाद के लिए एडजस्टमेंट नहीं करता, बल्कि वह सिर्फ़ इसलिए एडजस्टमेंट करता है, ताकि उसका दावती मिशन किसी रुकावट के बग़ैर पुर-अमन अंदाज़ में जारी रहे। मुहर्रिक का यह फ़र्क़ बहुत अहम है। इसी फ़र्क़ की बिना पर ऐसा होता है कि मुसलमान का एडजस्टमेंट एक ऐसा इबादती अमल बन जाता है, जो उसे आख़िरत में अज्र-ए-अज़ीम का मुस्तहिक़ बना दे। इसके बरअक्स दूसरों का एडजस्टमेंट सिर्फ़ ज़ाती मफ़ाद की बुनियाद पर होता है, इससे ज़्यादा उसकी कोई और हैसियत नहीं।

मज़्कूरा क़िस्म का एडजस्टमेंट मौजूदा दुनिया का एक लाज़िमी क़ानून है। इस मामले में किसी भी शख़्स या गिरोह का कोई इस्तिस्ना (exception) नहीं। इसका मतलब यह है कि मुसलमान अगर उसूली बुनियाद पर एडजस्टमेंट न करें, तो उन्हें मफ़ाद की बुनियाद पर एडजस्टमेंट का मामला करना होगा, मगर ऐसी सूरत में उनका एडजस्टमेंट इबादत का अमल न होगा, बल्कि वह सिर्फ़ मौक़ापरस्ती

(expediency) का एक मामला होगा यानी वही चीज़, जिसे शरीयत की ज़बान में मुनाफ़क़त (hypocrisy) कहा जाता है। उसूल-पसंदी एक आला अख़्लाक़ी सिफ़त है, इसके मुक़ाबले में मौक़ापरस्ती एक इंतिहाई बुरी सिफ़त।

इस दुनिया में किसी आदमी के लिए सिर्फ़ दो में से एक का इंतिख़ाब (option) है— इख़्लास या मुनाफ़क़त। मुख़्लिसाना ज़िंदगी में मुनाफ़क़त का कोई मुक़ाम नहीं। इसी तरह मुनाफ़िक़ाना ज़िंदगी में इख़्लास का कोई दर्जा नहीं। दावती मिशन वाहिद मिशन है, जो आदमी को इस मामले में मुनाफ़िक़ाना रविश से बचाता है। दावती मिशन आदमी के अंदर एक ऐसा मिज़ाज पैदा करता है कि वह अपने आला रब्बानी मिशन की ख़ातिर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट का तरीक़ा इख़्तियार करे। बज़ाहिर अगरचे दाई भी एडजस्टमेंट का मामला करता है, मगर उसका एडजस्टमेंट उसूल की बुनियाद पर होता है, न कि मफ़ाद की बुनियाद पर।

यह कोई सादा मामला नहीं। इसका मतलब यह है कि मुसलमान अगर दावती मस्लिहत की बिना पर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट न करें, तो उन्हें ज़ाती मस्लिहत के बिना पर दूसरों के साथ एडजस्टमेंट करना पड़ेगा। गोया कि अगर वे दूसरों के दरमियान मुख़लिस बनकर न रहें, तो उन्हें दूसरों के दरमियान मुनाफ़िक़ बनकर रहना होगा और बिला-शुब्हा मुनाफ़िक़ाना ज़िंदगी से ज़्यादा बुरी कोई चीज़ इस दुनिया में नहीं।

मुसलमान की असल हैसियत

अपनी असल हैसियत के एतिबार से मुसलमान दाई हैं और दूसरी तमाम अक़्वाम उनकी मदऊ यानी मुसलमान दीन-ए-ख़ुदावंदी के

अमीन हैं और उनकी यह ज़िम्मेदारी है कि वे इस अमानत को तमाम इंसानों तक पहुँचाएँ। इसी फ़र्ज़ की अदायगी में उनकी कामयाबी का राज़ छिपा हुआ है— दुनिया में भी और आख़िरत में भी।

यह कोई सादा बात नहीं। यह एक इंतिहाई नाज़ुक ख़ुदाई ज़िम्मेदारी का मामला है। मुसलमान अपनी इस ज़िम्मेदारी को सिर्फ़ उस वक़्त अदा कर सकते हैं, जबकि वे इस ज़िम्मेदारी के तक़ाज़ों को समझें और इसे अपनी ज़िंदगी में भरपूर तौर पर इस्तेमाल करें। दाई की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ दाईआना किरदार के साथ अदा की जा सकती है। दाईआना किरदार के बग़ैर दावती ज़िम्मेदारी को अदा करना इसी तरह नामुमकिन है, जिस तरह किसी औरत के लिए मादराना शफ़क़त के बग़ैर माँ की ज़िम्मेदारी को अदा करना।

क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में, दावत का आगाज़ 'नुस्ह' (نُصح) (अल-आराफ़, 7:68) से होता है यानी मदऊ के लिए एकतरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही। दावती अख़्लाक़ का तक़ाज़ा है कि दाई के दिल में अपने मदऊ के लिए सिर्फ़ मुस्बत जज़्बात हों। मनफ़ी जज़्बात से उसका दिल मुकम्मल तौर पर ख़ाली रहे। इसी का नाम एकतरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही है। इस क़िस्म की एकतरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही के बग़ैर दाई अपनी दाईआना ज़िम्मेदारी को अदा नहीं कर सकता।

मौजूदा दुनिया का निज़ाम इस तरह बना है कि यहाँ हमेशा एक शख़्स को दूसरे शख़्स से और एक गिरोह को दूसरे गिरोह की तरफ़ से नाख़ुशगवार तजुर्बात पेश आते रहते हैं। एक की कोई बात दूसरे के लिए इश्तिआल-अंगेज़ी का सबब बन जाती है। यह फ़ितरत का निज़ाम है और फ़ितरत के निज़ाम को बदलना हरगिज़ किसी के लिए मुमकिन नहीं। ऐसी हालत में दाई के अंदर अपने मदऊ के लिए एकतरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही का जज़्बा सिर्फ़ उस वक़्त बरक़रार रह सकता है, जबकि वह एकतरफ़ा अख़्लाक़ियात के उसूल पर क़ायम हो। लोगों के साथ उसकी

रविश दूसरों के अमल के ज़ेरे-असर न बने, बल्कि वह उसके अपने सोचे-समझे उसूल के तहत बनी हो। वह रद्दे-अमल (reaction) की नफ़्सियात से मुकम्मल तौर पर ख़ाली हो।

मुसलमान दाई गिरोह की हैसियत रखते हैं। इस एतिबार से मुसलमानों के लिए जायज़ नहीं कि वे दूसरी क़ौमों के ख़िलाफ़ शिकायत और एहतिजाज की तहरीक चलाएँ। दाईआना शरीयत में शिकायत और एहतिजाज के लिए कोई जगह नहीं, क्योंकि मुसलमान जिस क़ौम के ख़िलाफ़ शिकायत और एहतिजाज की तहरीक चलाएँगे, वह अपनी हक़ीक़त के एतिबार से एक मदऊ क़ौम होगी। मुसलमानों के लिए जायज़ नहीं कि वे अपनी मदऊ क़ौम के साथ मुख़ालिफ़ क़ौम जैसा मामला करें। मुसलमानों को हर हाल में और हर क़ौम के साथ हमेशा मोतदिल ताल्लुक़ को बरक़रार रखना है, क्योंकि मोतदिल ताल्लुक़ात के माहौल ही में दावत इलल्लाह का काम हो सकता है। जहाँ मुसलमान और ग़ैर-मुसलमान के दरमियान मोतदिल ताल्लुक़ात न हों, वहाँ दावत का काम अंजाम देना मुमकिन ही नहीं।

क़ुरआन की सूरह 'अल-अहज़ाब' में एक हुक्म इन अल्फ़ाज़ आया है—

وَدَعْ أَذَىٰهُمْ وَتَوَكَّلْ عَلَى ٱللَّهِ.

"उनकी ईज़ाओं को नज़र-अंदाज़ करो और अल्लाह पर भरोसा रखो।" (33:48)

इस आयत का मतलब यह है कि इंसान से न माँगकर अल्लाह से माँगो, मुतालबाती तरीक़ा छोड़कर दुआ का तरीक़ा इख़्तियार करो, इसीलिए हर पैग़ंबर ने अपनी मदऊ क़ौम से कहा—

لَآ أَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ مَالًا.

"मैं तुमसे किसी माद्दी फ़ायदे का तालिब नहीं हूँ।" (11:29)

मैं सिर्फ़ देने वाला हूँ, न कि तुमसे कोई चीज़ लेने वाला। इससे मालूम हुआ कि मदऊ क़ौम के मुक़ाबले में हुक़ूक़ (rights) के नाम पर मुतालबाती मुहिम चलाना पैग़ंबराना सुन्नत के मुताबिक़ सिरे से जायज़ ही नहीं।

जैसा कि मालूम है, पैग़ंबर आख़िर-उज़-ज़मा सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर नबुव्वत ख़त्म हो गई, मगर जो चीज़ ख़त्म हुई, वह नबुव्वत है, न कि कार-ए-नबुव्वत। यह एक हक़ीक़त है कि अब कोई नया पैग़ंबर आने वाला नहीं, लेकिन जहाँ तक पैग़ंबर के दावती मिशन की बात है, वह हमेशा और हर क़ौम के दरमियान जारी रहेगा। इस एतिबार से मुसलमान ख़त्म-ए-नबुव्वत के बाद मुक़ाम-ए-नबुव्वत पर हैं यानी हर मुसलमान के लिए ज़रूरी है कि वह पैग़ंबर के दावती मिशन में ब-क़दर इस्तिताअत अपना हिस्सा अदा करे। यह दावती अमल हर फ़र्द-ए-मुसलमान के लिए फ़र्ज़ की हैसियत रखता है (अल-बक़रह, 2:143)। जो लोग इस फ़र्ज़ को अदा न करें, उनके लिए सख़्त अंदेशा है कि ख़ुदा के नज़दीक वे पैग़ंबर आख़िर-उज़-ज़मा के उम्मती होने का हक़ अपने लिए खो दें।

ज़िंदगी का फ़ॉर्मूला

इंसान के लिए ज़िंदगी का कामयाब फ़ॉर्मूला सिर्फ़ एक है और वह यह है— आख़िरत के लिए ग़म और दुनिया के लिए बे-ग़म। यही इंसान के तमाम मामलात का ख़ुलासा है। यही वाहिद तरीक़ा-ए-ज़िंदगी (way of life) है, जिसमें इंसान अपने लिए सुकून पा सकता है।

इंसान के अंदर पैदाइशी तौर पर तलब का जज़्बा पाया जाता है। इंसान अपनी पूरी साख़्त के एतिबार से चाहता है कि कोई चीज़ हो, जिसे वह अपना असल कंसर्न (sole concern) बनाए, जिसके हुसूल के लिए वह अपना सारा वक़्त और अपनी सारी तवानाई (energy) सर्फ़ करे। यह इंसान की फ़ितरत का तक़ाज़ा है और कोई भी शख़्स इस फ़ितरी तक़ाज़े से ख़ाली नहीं।

इंसान जब पैदा होकर इस दुनिया में आता है, तो वह देखता है कि उसके गर्द-ओ-पेश एक माद्दी दुनिया (material world) फैली हुई है। हर आदमी इस माद्दी दुनिया के हुसूल को अपना कंसर्न बनाए हुए है। वह इसके हुसूल के लिए रात-दिन कोशिश कर रहा है। इस माहौल में हर पैदा होने वाला आदमी वही करने लगता है, जो दूसरे मर्द और औरत कर रहे हैं, मगर इसका नतीजा क्या है? हर आदमी सारी जद्दोजहद के बावजूद अपने मतलूब को हासिल नहीं कर पाता और मायूसी (despair) के एहसास में मर जाता है। इस दुनिया में बीमारी, हादसा, बुढ़ापा, नुक़सानात और मौत फ़ैसला-कुन तौर पर इस राह में रुकावट हैं कि आदमी इस दुनिया में अपनी तलब की तकमील कर सके।

यह उमूमी नतीजा हर औरत और मर्द के लिए एक रहनुमा वाक़या है। यह नतीजा बताता है कि फ़ितरत की तलब की तकमील (fulfilment) मौजूदा दुनिया में मुमकिन नहीं। इसके हुसूल का मुक़ाम आख़िरत है, जो मौत के बाद आने वाली है। ऐसी हालत में इंसान के लिए कामयाबी का फ़ॉर्मूला सिर्फ़ यह है कि वह आख़िरत को अपना सुप्रीम कंसर्न बनाए और मौजूदा दुनिया के मामले में वह ब-क़द्र ज़रूरत पर राज़ी हो जाए। दुनिया में ब-क़द्र ज़रूरत पर राज़ी हो जाना और आख़िरत को अपना सुप्रीम कंसर्न बना लेना, यही इस दुनिया में कामयाब ज़िंदगी का फ़ॉर्मूला है।

अक़वाल-ए-हिकमत

अल्लाह से डरने वाले इंसान के लिए दलील सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-लिहाज़ चीज़ होती है, मगर जो दिल अल्लाह के डर से ख़ाली हो, उसके लिए दलील सबसे ज़्यादा नाक़ाबिल-ए-लिहाज़ चीज़ बन जाएगी।

अल्लाह के लिए इबादत है और इंसान के लिए ख़िदमत। इबादत की हक़ीक़त ख़ुदा के आगे मुकम्मल सुपुर्दगी है और ख़िदमत की हक़ीक़त इंसान की कामिल ख़ैर-ख़्वाही।

बे-पैसे वाला इंसान पैसे की तरफ़ दौड़ रहा है और जिसके पास पैसा आ जाए, वह सरकशी की तरफ़।

होशियार आदमी मौत के बारे में सोचता है और ग़ाफ़िल आदमी सिर्फ़ ज़िंदगी के बारे में।

मौजूदा दुनिया इमकानात-ए-जन्नत का तआरुफ़ है, वह तामीर-ए-जन्नत का मुक़ाम नहीं।

जो चीज़ आदमी के लिए कल मुक़द्दर की गई हो, उसे आप किसी भी तरीक़े से आज हासिल नहीं कर सकते।

लोग जिस चीज़ को मौत के इस पार ढूँढ रहे हैं, उसे क़ुदरत ने मौत के उस पार रख दिया है।

मुसल्लमा शख़्सियतों की सतह पर लोग दाद-ए-एतिराफ़ दे रहे हैं, हालाँकि एतिराफ़ वह है, जिसका सबूत ग़ैर-मुसल्लमा शख़्सियत की सतह पर दिया जाए।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

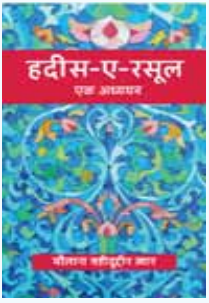

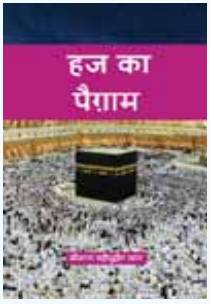

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

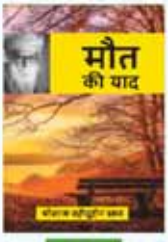

₹40/-

₹20/-

₹40/-

₹30/-

₹45/-

₹20/-

₹40/-